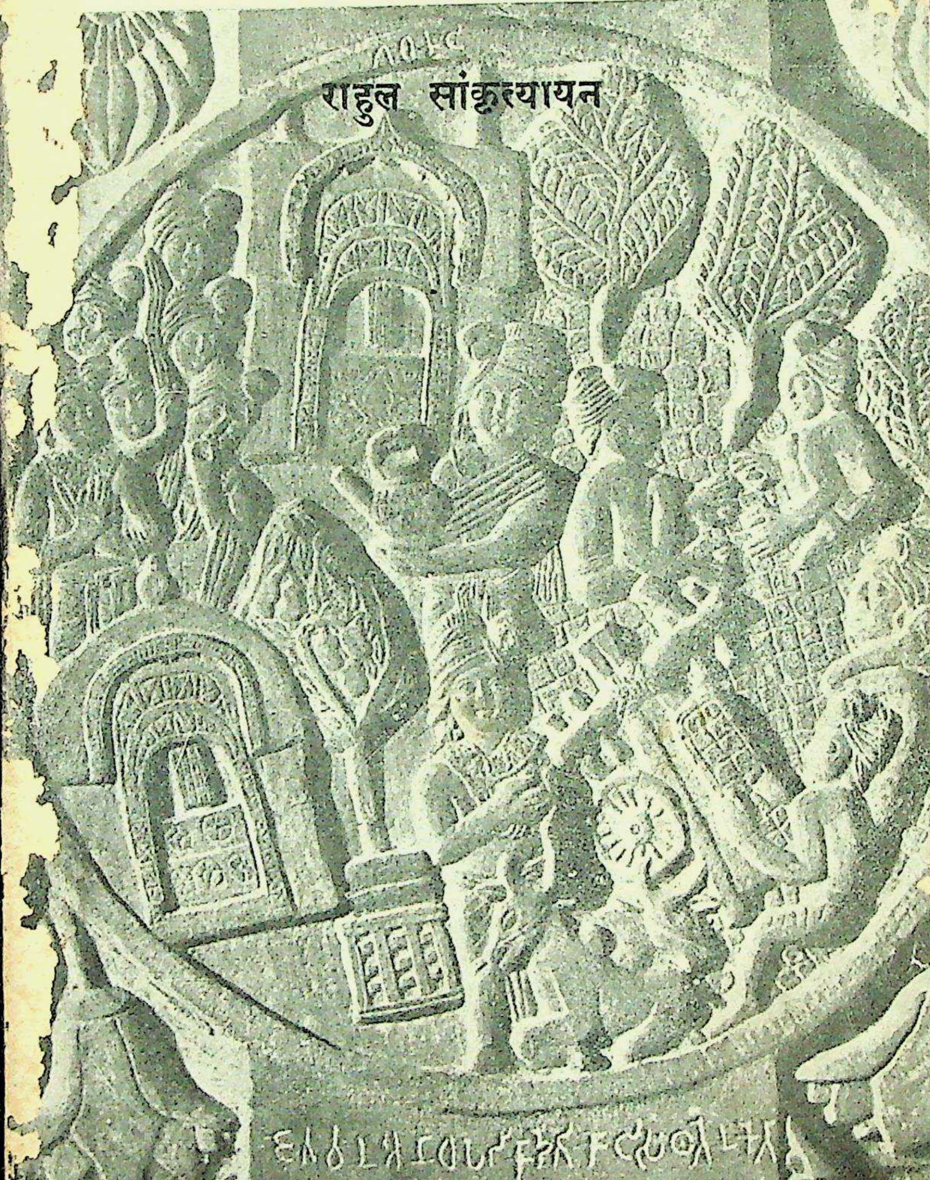
जेतवन श्रावस्ती

राहुल सांकृत्यायन



महाबोधि सोसाइटी श्रावस्ती-बहराइच

चिमनी भी होती थी। (७) बड़े जंताघरों में आग जलाने का स्थान बीच में, छोटों में एक किनारे पर। (८) जंताघर की भूमि ईंट, पत्थर या लकड़ी से ढँकी रहती थी। (९) उसमें पीढ़े पर बैठकर नहाते थे। (१०) वह ईंट, पत्थर या लकड़ी की दीवार से घिरा रहता था।

जेतवन का जंताघर भी जेतवन के अगल-बगल एक कोने में रहा होगा, जो ऊपर वर्णन किये गये तरीके पर संभवतः ईंट और लकड़ी से बना होगा। ऐसा स्थान जेतवन के पूर्व-दक्षिण कोण से संभव हो सकता है; अर्थात् विहार B के आस पास।

आसनशाला अंबलकोट्ठक——जातकट्ठकथा में इसके लिए यह शब्द है——

"अंबलकोष्ठक[1] आसनशाला में भात खाने वाले कुत्ते के सम्बन्ध में कहा। उस कुत्ते)को जन्म से ही पनभरों ने लेकर वहाँ पाला था।" इससे हमें ये बातें मालूम होती हैं——(१) जेतवन में आसनशाला थी, (२)जिसके पास या जिसमें ही अंबलकोष्ठक नाम की कोई कोठरी थी,(३) जिसमें पानी भरने वाले अक्सर रहा करते थे; (४) पानीशाला या उदपानशाला भी यहीं पास में थी।

यह स्थान भी गंधकुटी से कुछ हट कर ही होना चाहिए। पनभरों के सम्बन्ध से मालूम होता है, यह भी जंताघर (विहार B) के पास ही कहीं पर रहा होगा।

उपसंपदामालक——"फिर[2] उसको स्थविर ने जेतवन में आकर अपने हाथ से नहलाकर, मालक में खड़ा कर प्रव्रजित कर, उसकी लँगोटी और हलको माल की सीमा ही में वृक्ष की डाल पर रखवा दिया।"

अन्यत्र धम्मपद (८:११ अ० क०) में भी उपसंपदा मालक नाम आता है।

यह संभवतः गंधकुटी के पास कहीं एक स्थान था, जहाँ प्रव्रज्या दी जाती थी। जेतवन में वैसे सभी जगह वृक्ष ही वृक्ष थे, अतः इसकी सीमा में वृक्ष का होना कोई विशेषता नहीं रखता।

---

१ जातक, २४२ २ध० प०, २५:१०, अ० क०

जेतवन-श्रावस्ती

लेखक

स्व० महापंडित राहुल सांकृत्यायन

भारतीय महाबोधि सोसाइटी

श्रावस्ती-बहराइच

प्रकाशक

भिक्षु ग० प्रज्ञानन्द

अध्यक्ष

भारतीय महाबोधि सोसाइटी

श्रावस्ती-बहराइच

प्रथम संस्करण १९६४ ई०

द्वितीय संस्करण १९८५ ई०

मूल्य : तीन रुपया

मुद्रक :

लखनऊ पब्लिशिंग हाउस

३७, कैन्टूनमेन्ट रोड, लखनऊ

परिचय

प्रस्तुत निबन्ध के लेखक स्वर्गीय महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी से प्रायः समस्त हिन्दी प्रेमी पाठक परिचित हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के महान् विद्वान् तथा अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। साहित्य, दर्शन, इतिहास, भूगोल, राजनीति, देशदर्शन आदि प्रायः सभी विषयों में उनकी लौह लेखनी ने हिन्दी-ससार को अनेक अमूल्य भेंट प्रदान की हैं। प्रस्तुत निबन्ध भी उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति "पुरातत्व निबन्धावली" से उद्धृत है।

महापंडित जी पुरातत्व के पडित थे। प्राचीन खण्डहरों का भाँति-भाँति अध्ययन कर उन्होंने अपनी लेखनी से इतिहास को पुनःजीवित कर दिया है। बौद्धधर्म तथा तत्सम्बन्धी तीर्थ स्थानों के श्रद्धालु लोगों को प्रस्तुत निबन्ध से अनेक महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होंगे।

कमला सांकृत्यायन

लखनऊ
६-७-६४

विषय-सूची

जेतवन

जेतवन श्रावस्ती से दक्षिण तरफ था; चीनी भिक्षुओं के अनुसार यह प्रायः एक मील (५,६,७ ली) के फासले पर था। पुरातत्त्व-विषयक खोजों से निश्चित हो चुका है कि **महेट** से दक्षिण **सहेट** ही जेतवन है। चीनी यात्रियों के ग्रन्थों में हम इसका दर्वाजा पूर्व मुँह देखते हैं। जेतवन की खुदाई में जो दो प्रधान इमारतें निकली हैं, जिन्हें गंधकुटी और कोसंबकुटी से मिलाया गया है, दोनों का द्वार पूर्व को ही है। यह इस बात की साक्षी देते हैं कि मुख्य द्वार पूर्व तरफ था। नगर से दक्षिण होने पर भी प्रधान दर्वाजा उत्तर मुँह न होकर पूर्व मुँह था, इसका कारण यही था कि श्रावस्ती का दक्षिण द्वार वहाँ से पूर्व तरफ पड़ता था। जेतवन बौद्ध धर्म के अत्यन्त पवित्र स्थानों में से है। यद्यपि त्रिपिटक के अत्यन्त पुरातन भाग **दीघनिकाय** (महापरिनिब्बानसुत्त[1]) में जो चार अत्यन्त पवित्र स्थान गिनाये गये हैं, उनमें इसका नाम नहीं है; तो भी दीघनिकाय की **अट्ठकथा**[2] में इसे चार 'अविजहित' स्थानों में रखा गया है। त्रिपिटक में सुरक्षित बुद्ध के उपदेशों में सबसे अधिक जेतवन में हुए हैं। **मज्झिमनिकाय** के डेढ़ सौ सुत्तों में ६५ जेतवन ही में कहे गये; संयुक्त और अंगुत्तर निकाय में तीन

---

१ चत्तारिमानि आनन्द ! सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयानि...ठानानि...इध तथागता जातोति,...इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति,...इध तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितन्ति,...इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बाणधातुया परिनिब्बुतो'ति...। —महा० परि० सुत्त, १६

२ चत्तारि अविजहितट्ठानानि....बोधिपल्लंको....। धम्मचक्कप्पवत्तनट्ठानं इसिपतने मिगदाये....। देवोरोहणकाले संकस्सनगरद्वारे पठमपदगण्ठि। जेतवने गन्धकुटिया चत्तारि मञ्चपादट्ठानानि अविजहितानेव होन्ति।...विहारोपि न विजहति येव...। इदानि नगरं उत्तरतो विहारो दक्खिणतो...।

—दी० नि०, महापदानसुत्त, १४; अ० क० २८२

चतुर्थांश से भी अधिक सुत्त जेतवन में कहे गये हैं। भिक्षुओं के शिक्षापदों में भी अधिक श्रावस्ती—जेतवन में ही दिये गये। विनय पिटक के 'परिवार' ने नगरों के हिसाब से उनकी सूची इस प्रकार दी है—

कतमेसु सत्तसु नगरेसु पञ्ञत्ता।

....

दस वेसालियं पञ्ञत्ता, एकवीसं राजगहे कता।
छ-ऊन तीणि सतानि, सब्बे सावत्थियं कता॥
छ आलवियं पञ्ञत्ता, अट्ठ कोसंबियं कता।
अट्ठ सक्केसु वुच्चन्ति, तयो भग्गेसु पञ्ञत्ता॥

—परिवार, गाथासंगणिक।

अर्थात् साढ़े तीन सौ शिक्षापदों में २९४ श्रावस्ती में ही दिये गये और परीक्षण करने पर इनमें से थोड़े से ही पूर्वाराम में और बाकी सभी जेतवन में दिये गये। इसलिए जेतवन का[1] खास स्थान होना ही चाहिये।

विनयपिटक के चुल्लवग्ग में जेतवन के बताये जाने का इतिहास दिया गया है। विनयपिटक की पाँच पुस्तकें हैं—**पाराजिक, पाचित्ति, महावग्ग, चुल्लवग्ग** और **परिवार**। इनमें से **परिवार तो पहले चारों का सरल संग्रह मात्र है।** संग्रह-समाप्ति ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में हुई जान पड़ती है। बाकी चार उससे पुराने हैं। इसमें भी महावग्ग और चुल्लवग्ग, जिन्हें इकट्ठा '**खधक**' भी कहते हैं। पातिमोक्खको छोड़ विनयपिटक के सबसे पुराने भाग हैं; और इनका प्रायः सभी अंश **अशोक** (तृतीय संगीति) के समय का मानना चाहिये। चुल्लवग्ग[2] की कथा यों है—

"अनाथपिंडक गृहपति राजगृह के **श्रेष्ठी** का बहनोई था। एक बार अनाथपिंडक **राजगृह** गया। उस समय राजगृह के श्रेष्ठी ने संघ-सहित बुद्ध को निमंत्रित किया था। अनाथपिंडक को बुद्ध के दर्शन की इच्छा हुई। वह अधिक रात रहते ही घर से निकल पड़ा और **सीवद्वार** होकर सीतवन पहुँचा। उपासक

---

१ इदं हि तं जेतवनं इसिसंघनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन पीतिसञ्जननं मम॥

—सं० नि०, १:५:८, २:२:१०।

२ विनयपिटक, सेनासनक्खन्धक, पृ० २५४।

बनने के बाद उसने सावत्थी में भिक्षु-संघ सहित बुद्ध को, वर्षा-वास करने के लिए निमंत्रित किया। अनाथपिंडक ने श्रावस्ती जाकर चारों ओर नजर दौड़ाई। उसने विचार किया कि भगवान् का विहार ऐसे स्थान में होना चाहिये, जो ग्राम से न बहुत दूर और न बहुत समीप हो। जहाँ आने-जाने की आसानी हो, आदमियों के पहुँचने योग्य हो। अनाथपिंडक ने राजकुमार जेत के उद्यान को देखा, जो इन लक्षणों से युक्त था। उसने राजकुमार जेत से कहा--आर्यपुत्र ! मुझे अपना उद्यान आराम बनाने के लिए दो। राजकुमार ने कहा—वह (कहापणों की) कोटि (=कोर) लगाकर बिछाने से भी अदेय है। अनाथपिंडक ने कहा—आर्यपुत्र ! मैंने आराम ले लिया। बिका या नहीं बिका इसके लिए उन्होंने कानून के मंत्रियों से पूछा। महामात्यों ने कहा—आर्यपुत्र ! आराम बिक गया, क्योंकि तुमने मोल लिया। फिर अनाथपिंडक ने जेतवन में कोर से कोर मिलाकर मोहरें बिछा दीं। एक बार लाया हुआ हिरण्यद्वार के कोठे के बराबर थोड़ी सी जगह के लिए काफी न हुआ। गृहपति ने और हिरण्य (=अशर्फी) लाने के लिए मनुष्यों को आज्ञा दी। राजकुमार जेत ने कहा—बस गृहपति, इस जगह पर मत बिछाओ। यह जगह मुझे दो, यह मेरा दान होगा। गृहपति ने उस जगह को जेत कुमार को दे दिया। जेत कुमार ने वहाँ कोठा बनवाया। अनाथपिंडक गृहपति ने जेतवन में विहार, परिवेण, कोठे, उपस्थानशाला, कप्पिय-कुटी, पाखाना, पेशाबखाना, चंक्रम, चक्रमणशाला, उदपान, उदपानशाला, जंताघर, जंतघरशाला, पुष्करिणियाँ और मंडप बनवाये। भगवान् धीरे-धीरे चारिका करते श्रावस्ती, जेतवन में पहुँचे। गृहपति ने उन्हें खाद्य भोज्य से अपने हाथों तर्पित कर, जेतवन को आगत-अनागत चातुर्दिश संघ के लिए दान किया।"

अनाथपिंडक ने 'कोटिसंथारेन' (कार्षापणों की कोर से कोर मिलाकर) इसे खरीदा था। ई०पू० तृतीय शताब्दी के भरहुत के स्तूपों में भी 'कोटि-संठतेत केता' उत्कीर्ण है। अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कार्षापण बिछाकर जेतवन खरीद करने की कथा ई०पू० तीसरी शताब्दी में प्रसिद्ध थी।

पाली ग्रन्थों[1] में जेतवन की भूमि आठ करीष लिखी है। 'करीसं चतुरम्मणं'

१ देखो उपर्युक्त चुल्लवग्ग की अट्ठकथा।

पालिकोष **अभिधम्पदीपिका** (१९७) में आता है। डाक्टर **रीस डेविड्स ने** 'अम्मण' (सिंहली अमुणु, सं० अर्मण) को प्रायः दो एकड़ के बराबर लिखा है। इस प्रकार सारा क्षेत्रफल ६४ एकड़ होगा। श्री दयाराम साहनी ने (१९०७-८ की Arch S. R., p. 117) लिखा है—

"The more conspicuous part of the mound at the present is 1600 feet from the north-east corner to the south-west, and varies in width form 450' to 700', but it formerly extended for several hundred feet further in the eastern direction"

इस हिसाब से क्षेत्रफल बाईस एकड़ होता है। यद्यपि अठारह करोड़ संख्या संदिग्ध है, तो भी इसे कार्षापण मानकर (जिसका ही व्यवहार उस समय अधिक प्रचलित था) देखने से भी हमें इस क्षेत्रफल का कुछ अनुमान हो सकता है। पुराने 'पंचमार्क' चौकोर कार्षापणो की लम्बाई-चौड़ाई यद्यपि एक समान नहीं है, तो भी हम उसे सामान्यतः ·७ इंच ले सकते हैं, इस प्रकार एक कार्षापण से ·४९ या ½ वर्ग इंच भूमि ढँक सकती है. अर्थात् १८ करोड़ कार्षापणों से ९ करोड़ वर्ग इंच, जो प्रायः १४·३५ एकड़ के होते हैं।[1] आगे चलकर, जैसाकि हम बतलायेंगे, विहार नं० १९ और उसके आस-पास की भूमि जेतवन की नहीं है, इस प्रकार क्षेत्रफल १२००'×६००' अर्थात् १४·७ एकड़ रह जाता है जो १८ करोड़ के हिसाब के समीप है। गंधकुटी जेतवन के प्रायः बीचोबीच थी। खेत नं० ४८७ जेतवन की पुष्करिणी है, क्योंकि नक्शा नं० १ का डी० इसी का संकेत करता है। आगे हम बतलायेंगे कि पुष्करिणी जेतवन विहार के दर्वाजे के बाहर थी। पुष्करिणी के बाद पूर्व तरफ जेतवन की भूमि होने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। इस प्रकार गंधकुटी के बीचो-बीच से ४०० फुटपरे, पुष्करिणी की पूर्वीय सीमा के कुछ आगे बढ़कर जेतवन की पूर्वी सीमा थी। उतना ही

१ दीघनिकाय अट्ठकथा, महापदानसुत्त, २८। "अम्हाकंपरण भगवतो पकतिमानेन सोलसकरीसे, राजमानेन अट्ठ करीसे पदे से बिहारो पतिट्ठितोति।"

पश्चिम तरफ मान लेने पर पूर्व-पश्चिम की चौड़ाई ८००' होगी। लम्बाई जानने के लिए जेतवन खास के विहार नं० ५ (**कारेरि** गंधकुटी) को सीमा पर रखना चाहिये। गंधकुटी से दक्षिण ६८०' उतना ही उत्तर ले लेने से लम्बाई उत्तर दक्षिण १३६०' होगी; इस प्रकार सारा क्षेत्रफल प्रायः २५ एकड़ के होगा। इस परिणाम पर पहुँचने के लिए हमारे पास तीन कारण हैं—(क) गंधकुटी जेतवन के बीचोबीच थी, जेतवन वर्गाकार था, इसके लिए कोई प्रमाण न तो लेख में है और न भूमि पर ही। इसलिए जेतवन को एक आयात क्षेत्र मानकर हम उसके बीचो-बीच गंधकुटी को मान सकते हैं। (ख) गंधकुटी के पूर्व तरफ का डी० ही पुष्करिणी का स्थान मालूम होता है, जिसकी पूर्वीय सीमा से जेतवन बहुत दूर नहीं जा सकता। (ग) विहार नं० १९ को राजकाराम मान लेने पर जेतवन की सीमा पर विहार नं० ५ तक जा सकती है।

ऊपर के वर्णन से हम निम्न परिणाम पर पहुँचते है—

(१) १८ करोड़ कार्षापण बिछाने से १८·३४८ एकड़

(२) साहनी के अनुसार वर्तमान में २२·२ एकड़ (१६००'×६००')

(३) उसमें से राजकाराम निकाल देने पर १४·७ ए० (१२००'×६००')

(३) गंधकुटी, पुष्करिणी, कारेरि कुटी मे २४·९ ए० (१३६०'×८००')

(५) ८ करीस ?, २ (अम्मण = २ एकड़) ६४ एकड़

एक और तरह से भी इस क्षेत्रफल के बारे में विचार कर सकते हैं। करीस[1] (संस्कृत खारीक) का परिमाण **अभिधानप्पदीपिका** और लीलावती में इस प्रकार दिया है—

४ कुडव या पसत (पसर) = १ पत्थ	४ कुडव = प्रस्थ
४ पत्थ = १ आल्हक	४ प्रस्थ = आढक
४ आल्हक = १ दोण	४ आढक = द्रोण

---

१ **परमत्थजोतिका** II, p. 476 "**तत्थ वीसतिखारिकोति, मागधकेन पत्थेन चत्तारो पत्था कोसलरट्ठेकपत्थो होति, तेन पत्थेन चत्तारो पत्था आढ़कं, चत्तारि आढ़कानि दोणं, चतुदोणं मानिका, चतुमानिकं खारि, ताय खारिया वीसति खारिको तिलवाहोति; तिलसकटं।**"

४ द्रोण	= १ माणी	
४ माणी	= १ खारी	१६ द्रोण=खारी

विनय में ४ **कहापण** का एक कंस लिखा है। कसं को कर्ष मान लेने पर यह वजन और भी चौगुना हो जायगा, अर्थात् १६ मन से भी ऊपर। ऊपर के नाम में २० खारी का एक तिलवाह, अर्थात् तिलों भरी गाड़ी माना है, जो इस हिसाब से अवश्य ही गाड़ी के लिये असम्भव हो जायगा।

सुत्त० नि० अट्ठकथा में कोसलक परिमाण इस प्रकार है।

४ मागधक पत्थ	=कोसलक पत्थ
४ को० पत्थ	=को० आढ़क
४ को० आ०	=को० दोण
४ को० दो०	=को० मानिका
४ को० मा०	=खारी
२० खारी	= १ तिलवाह (=तिलसकट अर्थात् तिल से लदी गाड़ी)

वाचस्पत्य के उद्धरण से यह भी मालूम होता है लि ४ पल एक कुडव के बराबर है। **लीलावती** ने पल का मान इस प्रकार दिया है—

५ गुंजा	=माष
१६ माष	=कर्ष
४ कर्ष	=पल

अभिधानप्पदीपिका से यहाँ भेद पड़ता है—

४ वीहि (व्रीहि)	=गुंजा
२ गुंजा	=माषक

माषक कर्ष (=कार्षापण) का सोलहवां भाग है। **विनय**[1] में २० मासे का कहापण (कार्षापण) लिखा है। **समंतपासादिका** ने इस पर टीका करते हुए, इससे कम वजन वाले रुद्रदामा आदि के कार्षापणों का निर्देश किया है, हमें यहाँ उनसे प्रयोजन नहीं। हम इतना जानते हैं कि पुराने पंच-मार्क के कार्षापण

१ **विनयपिटक पाराजिका, २**

सिक्कों का वजन प्राय: १४६ ग्रेन के बराबर होता है। यही वजन उस समय के कर्ष का भी है। आजकल भारतीय सेर ८० तोले का है और तोला १८० ग्रेन के बराबर होता है। इस प्रकार एक मागध खारी आजकल के ४१.८ सेर के बराबर, अर्थात् प्राय: एक मन होगी और कोसलक खारी ४ मन के करीब। करीस का संस्कृत पर्याय खारीक अर्थात् खारी भर बीज से बोया जाने वाला खेत (तस्य वाप:, **पाणिनि** ५: १: ४५) है। पटना में पक्के ८ मन तेरह सेर धान से आजकल १६ एकड़ खेत बोया जा सकता है, इससे भी हमें, जेतवन की भूमि का परिमाण, एक प्रकार से, मिलता है।

राजकाराम (सललागार)-- अब हमें जेतवन की सीमा के विषय में एक वार फिर कुछ बातों को साफ कर देना है। हमने पीछे कहा था कि विहार न० १९ जेतवन-खास के भीतर नहीं था। **संयुक्त-निकाय**[1] में आता है—एक वार भगवान् श्रावस्ती के राजकाराम में विहार करते थे। उस समय एक हजार भिक्षुणियों का संघ भगवान् के पास गया। इस पर **अट्ठकथा** में लिखा है—राजा **प्रसेनजित्** द्वारा बनवाये जाने के कारण इसका नाम राजकाराम पड़ा था। बोधि के पहले भाग (५२७१३ ई० पू०) में भगवान् के महान लाभ-सत्कार को देखकर तीर्थिक लोगों ने सोचा, यह इतनी पूजा शील-समाधि के कारण नहीं है। यह तो इसी भूमि का माहात्म्य है। यदि हम भी जेतवन के पास अपना आराम बना सकें तो हमें भी लाभ-सत्कार प्राप्त होगा। तीर्थिकों ने अपने सेवकों से कहकर एक लाख कार्षापण इकट्ठा किया। फिर राजा को घूस देकर जेतवन के पास तीर्थिकाराम बनवाने की आज्ञा ले ली। उन्होंने जाकर खंभे खड़े करते हुए, हल्ला करना शुरू किया। बुद्ध ने गंधकुटी से निकल कर बाहर के चबूतरे पर खड़े हो आनन्द से पूछा—ये कौन हैं आनन्द ! मानों केवट मछली मार रहे हों। आनन्द ने कहा—तीर्थिक जेतवन के पास में तीर्थिकाराम बना रहे हैं। आनन्द ! शासन के विरोधी भिक्षु-संघ-के विहार में गड़बड़ डालेंगे। राजा से कह कर हटा दो। आनन्द भिक्षु संघ के साथ राजा के पास

---

[1] **सोतापत्ति-संयुत्तं** IV Chapter II **सहस्सक** or **राजकाराम वग्ग** v, p. 360

पहुँचे । घूस खाने के कारण राजा बाहर न निकला । फिर शास्ता ने सारिपुत्त और मोग्गलान को भेजा । राजा उनके भी सामने न आया । दूसरे दिन बुद्ध स्वयं भिक्षु-संघ सहित पहुँचे । भोजन के बाद उपदेश दिया और अंत में कहा— महाराज ! प्रव्रजितों को आपस में लड़ाना अच्छा नहीं है । राजा ने आदमियों को भेज कर वहां से तीर्थिकों को निकाल दिया और यह सोचा कि मेरा बनवाया कोई विहार नहीं है, इसलिये इसी स्थान पर विहार बनवाऊँ । इस प्रकार धन वापस किये बिना ही वहाँ विहार बनवाया ।

जातकट्ठकथा (निदान) में भी यह कथा आई है, जहाँ से हमें कुछ और बातें भी मालूम होती हैं ।

तीर्थिकों ने जंबूद्वीप के सर्वोत्तम स्थान पर बसना ही श्रमण गौतम के लाभ-सत्कार का कारण समझा और जेतवन के **पीछे की ओर** तीर्थिकाराम बनवाने का निश्चय किया । घूस देकर राजा को अपनी रायमें करके, बढ़ाइयों को बुलाकर, उन्होंने आराम बनवाना आरम्भ कर दिया ।

इन उद्धरणों से हमें पता लगता है—(१) जेतवन के पीछे की ओर पास ही में जहाँ से काम करने वालो का शब्द गंधकुटी में बैठे बुद्ध को खूब सुनाई देता था । तीर्थिकों ने अपना आराम बनाना आरम्भ किया था । (२) जिसे राजा ने पीछे बन्द करा दिया । (३) राजा ने वही आराम बनवाकर भिक्षु-संघ को अर्पण किया । (४) यह आराम प्रसेनजित् द्वारा बनवाया पहला आराम था । नक्शे में देखने से हमें मालूम होता है कि विहार नं० १९ जेतवन के पीछे और गंधकुटी से दक्षिण-पश्चिम की ओर है । फासला गंधकुटी से प्रायः ९० फीट तथा जेतवन की दक्षिण-पूर्व सीमा से बिल्कुल लगा हुआ हैं । इस प्रकार का दूसरा कोई स्थान नहीं है, जिस पर उपर्युक्त बातें लागू हों । इस प्रकार विहार नं० १९ ही राजकाराम है, जो मुख्य जेतवन से अलग था ।

इस विहार का हम एक जगह और (**जातकट्ठकथा** में) उल्लेख पाते हैं । यहाँ उसे **जेवतन-पिट्ठि विहार** अर्थात् जेतवन के पीछे वाला विहार कहा है । मालूम होता है, जेतवन और 'पिट्ठि विहार' के बीच में होकर उस समय रास्ता जाता था । दोनों विहारों के बीच से एक मार्ग के जाने का पता हमें **धम्मपद-ट्ठकथा** से भी लगता है । राजकाराम जेतवन के समीप था । प्रसेनजित् ने

बनवाया था। एक बार उसमें भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका की परिषद् में बैठे हुए बुद्ध धर्मोपदेश कर रहे थे। भिक्षुओं ने आवेश में आकर "जीवें भगवान् जीवें सुगत" इस तरह जोरसे नारा लगाया। इस शब्द से कथा में बाधा पड़ी। यहां स्पष्ट मालूम होता है कि यह राजकाराम अच्छा लम्बा-चौड़ा था।

ई० पू० छठी शताब्दी की बनी इमारतों के ढाँचे में न जाने कितनी बार परिवर्तन हुआ होगा। तीर्थिकाराम बनाने के वर्णन में खंभे उठाने और बढ़ई से ही काम आरम्भ करने से हम जानते हैं कि उस समय सभी मकान लकड़ी के ही अधिक बनते थे। जंगलों की अधिकता से इसमें आसानी भी थी। ऐसी हालत में लकड़ी के मकानों का कम टिकाऊ होना उनके अवशेषों के पाने के लिए और भी बाधक हैं। तथापि मौर्य-तल से नीचे खुदाई करने में शायद ऐसे कुछ चिन्हों के पाने में सफलता हो। अस्तु, इतना हम जानते हैं कि जहाँ कहीं बुद्ध कुछ दिन के लिए निवास करते थे, वहाँ उनकी गंधकुटी[1] अवश्य होती थी। यह गंधकुटी बहुत ही पवित्र समझी जाती थी, इसलिए सभी गंधकुटियों की स्मृति को बराबर कायम रखना स्वाभाविक है। जेतवन के नक्शे में हम विहार नं० १, २, ३, ५ और १९ एक विशेष तरह के स्थान पाते हैं। विहार नं० १९ के पश्चिमी भाग के बीच की परिक्रमा वाली इमारत के स्थान पर ही राजकाराम में बुद्ध की गंधकुटी थी।

आगे हम जेतवन के भीतर की चार इमारतों में 'सललागार' को भी एक बतलायेंगे। **दीघनिकाय** में आता है—"एक बार भगवान् श्रावस्ती के सललागार में विहार करते थे।" इस पर अट्ठकथा में लिखा है—"सलल (वृक्ष) की बनी गंधकुटी में।" **संयुत्तनिकाय** में भी—एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती के सललागार में बिहार करते थे।" इन पर **अट्ठकथा** में—"सलल-वृक्ष--मयी पर्णशाला या सलल वृक्ष के द्वार पर रहने से इस नाम का घर।"

---

१ बुद्ध के निवास की कोठरी को पहले विहार ही कहते थे। पीछे, मालूम होता है, उस पर फूल तथा दूसरी सुगन्धित चीजें चढ़ाई जाने के कारण 'गंध-कुटी' कहा जाने लगा।

दीघनिकाय की **अट्ठकथा** के अनुसार "सलल घर राजा प्रसेनजित का बनवाया हुआ था ।"

(१) संयुत्त और दीघ दोनों निकायों में सललागार के साथ जेतवन का नाम न आकर, सिर्फ श्रावस्ती का नाम आना बतलाता है कि सललागार जेतवन से बाहर था। (२) सललागार का अट्ठकथा में सलल घर हो जाना मामूली बात है। (३) (क) सलल घर राजा प्रसेनजित् का बनवाया था; (ख) जो यदि जेतवन में नहीं था तो कम से कम जेतवन के बहुत ही समीप था जिसे अट्ठकथा की परम्परा के समय वह जेतवन के अंतर्गत समझा जाने लगा।

हम ऐसे स्थान राजकाराम (विहार नं० १९) को बतला चुके हैं, जो आज भी देखने में जेतवन से बाहर नहीं जान पड़ता। इस प्रकार सललागार राजकाराम का ही दूसरा नाम प्रतीत होता है। श्रावस्ती के भीतर भिक्षुणियों का आराम भी, राजा प्रसेनजित् का बनवाया होने के कारण, 'राजकाराम' कहा जाता था; इसलिए यह सललागार या सलल घर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गंधकुटी—जेतवन के भीतर की अन्य इमारतों पर विचार करने से पूर्व गंधकुटी का जानना आवश्यक है; क्योंकि इसे जान लेने से और स्थानों के जानने में आसानी होगी। वैसे तो सारा जेतवन ही 'अविजहितट्ठान' माना गया है, किन्तु जेतवन में गंधकुटी[१] को चारपाई के चारों पैरों के स्थान 'अविजहित' हैं, अर्थात् सभी अतीत और अनागत बुद्ध इसको नहीं छोड़ते। कुटी का द्वार किस दिशा को था, इसके लिये कोई प्रमाण हमें नहीं मिला। तो भी पूर्व दिशा की विशेषता को देखते उसका पूर्व मुंह होना ही अधिक संभव प्रतीत होता है। जहां इस विषय पर पाली स्रोत से हम कुछ नहीं पाते, वहां यह बात संतोष की है कि सहेट के अन्दर विहार नं० १, २, ३, ५, १९ पांचो ही विशेष मंदिरों का द्वार पूर्व मुख को है। इसलिये मुख्य दर्वाजा भी पूर्व मुंह ही को रहा होगा। दो स्त्री-पुरुष पानी पीने के लिये जब जेतवन के भीतर घुसे

---

१ **"जेतवन गंधकुटिया चत्तारि मंचपादट्ठानानि अविजहितानेव होन्ति ।" दी० नि०, महापदान सुत्त, १४, अ० क० ।**

2 A. S. I. Report, 1910-11

तब उन्होंने बुद्ध को गंधकुटी की छाया में बैठे देखा। विहार नं० २ के दक्षिण पूर्व का कुआं यद्यपि **सर जान मार्शल**[२] के कथनानुसार कुषाण-कालका है, तो भी तथागत के परिभुक्त कुएँ की पवित्रता कोई ऐसी-वैसी वस्तु नहीं, जिसे गिर जाने दिया गया हो। यदि इसकी ईंटें कुषाण-काल की हैं, तो उससे यही सिद्ध हो सकता है, कि ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में इसकी अन्तिम मरम्मत हुई थी। दोपहर के बाद गंधकुटी की छाया में बैठे हुए, बुद्ध के लिए दर्वाजे की तरफ से कुएँ पर पानी पीने के लिए जाने वाला पुरुष सामनें पड़ेगा, यह स्पष्ट ही है।

गंधकुटी अपने समय की सुन्दर इमारत होगी। **संयुत्तनिकायकी अट्ठकथा**[१] में इसे देवविमान के समान लिखा है। भरहुत स्तूप के जेतवन-चित्र से इसकी कुछ कल्पना हो सकती है। गंधकुटी के बाहर एक चबूतरा (पमुख) था, जिससे गंधकुटी का द्वार कुछ और ऊँचा था। इस पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ थीं। पमुख के नीचे खुला आंगन था। चबूतरे को 'गंधकुटी पमुख' कहा गया है। भोजनोपरान्त यहाँ खड़े होकर तथागत भिक्षु-संघ को उपदेश देते थे। मध्यान्हभोजनोपरांत भगवान् पमुख पर खड़े हो जाते, फिर सारे भिक्षु वंदना करते थे, इसके बाद उन्हें उपदेश देकर बुद्ध भी गंधकुटी में चले जाते।

सोपानफलक—गंधकुटी में जाने से पहले, **मणिसोपानफलक** पर खड़े होकर भिक्षु-सघ को उपदेश देने का भी वर्णन आता है। आकाश में वर्षा कराने के चमत्कार के समय के वर्णन में आता है कि बुद्ध ने वर्षा करा, "पुष्करिणी में नहाकर लाल दुपट्टा पहन कमरबंद बाँध, सुगतमहाचीवर को एक कंधा (खुला रख) पहन, भिक्षु-संघ से चारों तरफ घिरे हुए जाकर गंधकुटी के आंगन में रखे हुए, श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठकर, भिक्षुसंघ के वंदना करने पर उठ कर मणिसोपानफलक पर खड़े हो, भिक्षु-संघ को उपदेश दे, उत्साहित कर सुरभि-गंधकुटी में प्रवेश कर.... ' यह सोपान संभवतः पमुख से गंधकुटी-द्वार पर चढ़ने के लिए था; क्योंकि अन्यत्र इस मणिसोपानफलक को गंधकुटी के द्वार पर देखते हैं—**एक दिन** रात को गंधकुटी के द्वार पर मणि-

---

१ **देव-संयुत्त**

सोपानफलक पर खड़े हो भिक्षुसंघ को सुगतोवाद दे गंधकुटी में प्रवेश करने पर धम्मसेनापति (=सारिपुत्र) भी शास्ता को वंदना कर अपने परिवेण को चले गये। महामोग्गलान भी अपने परिवेण को............।"

गंधकुटी-परिवेण—मालूम होता है, पमुख थोड़ा ही चौड़ा था। इसके नीचे का सहन गंधकुटी-परिवेण कहा जाता था। इस परिवेण में एक जगह बुद्धासन रखा रहता था, जहाँ पर बैठे बुद्ध की वंदना भिक्षु-संघ करता था। इस परिवेण में बालू बिछाई हुई थी; क्योंकि **मज्झिमनिकाय**[1] अ० क० में अनाथपिंडक के बारे मे लिखा है कि वह खाली हाथ कभी बुद्ध के पास न जाता था; कुछ न होने पर बालू ही ले जाकर गंधकुटी के आँगन में बिखेरता था। **अगुत्तरनिकाय-अट्ठकथा** में बुद्ध के भोजनोपरांत के काम का वर्णन करते हुए लिखा है—

इस प्रकार भोजनोपरांत वाले कृत्य के समाप्त होने पर, यदि गात्र धोना (==नहाना) चाहते, तो बुद्धासन से उठकर स्नान कोष्ठ में जाकर, रखे जल से शरीर को ऋतु ग्रहण कराते। उपट्ठाक भी बुद्धासन ले जाकर गंधकुटी-परिवेण में रख देता। भगवान् लाल दुपट्टा पहनकर कायबन्धन बाँधकर, उत्तरा संग एक कंधा (खुला रख) पहनकर वहां आकर बैठते; अकेले कुछ काल ध्यानावस्थित होते। तब भिक्षु जहां-तहां से भगवान् के उपस्थान के लिये आते। वहां कोई प्रश्न पूछते, कोई कर्मस्थान पूछते। कोई धर्मोपदेश सुनना चाहते। भगवान्, उसके मनोरथ को पूरा करते हुए, पहले याम को समाप्त करते थे।',

बुद्धासन-स्तूप—गंधकुटी का परिवेण इस तरह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान था। जेतवन में गंधकुटी में रहते हुए भगवान् यहीं आसीन हो प्रायः नित्य ही एक उपदेश देते थे, वंदना ग्रहण करते थे। इस तरह गंधकुटी-परिवेण की पवित्रता अधिक मानी जानी स्वाभाविक है। उसमें उस स्थान का माहात्म्य, जहाँ तथागत का आसन रखा जाता था, और भी महत्वपूर्ण है। ऐसे स्थान पर परवर्ती काल में कोई स्मृति-चिन्ह अवश्य ही बना होगा। जेतवन की खुदाई में स्तूप नं० H ऐसा ही एक स्थान मिला है। इसके बारे में सर जान

---

१ सुत्त १४३ की अट्ठकथा।

मार्शल लिखते हैं[1]'—

"Of the stupas H, J and K, the first-mentioned seems to have been invested with particular sanctity; for not only was it rebuilt several times but it is set immediately in front of temple No. 2, which there is good reason to identify with the famous Gandhakuti and right in the midst of the main road which approaches this sanctuary from the east...this plinth is constructed of bricks of same size as those monasteries (of Kushan Period)."

जान पड़ता है, यह स्तूप वह स्थान है जहां बैठकर तथागत उपदेश दिया करते थे, इसीलिए उसे बारबार मरम्मत करने का प्रयत्न किया गया है। गंधकुटी परिवेण में, भिक्षुओं के ही लिए नहीं, प्रत्युत गृहस्थों के लिए भी उपदेश होता था—"विशाखा, उपदेश सुनने के लिए, जेतवन गई। उसने अपने बहुमूल्य आभूषण 'महालतापसाधन' को दासी के हाथ में इसलिए दे दिया था कि उपदेश[2] सुनते समय ऐसे शरीर श्रृंगार की आवश्यकता नहीं। दासी उसे चलते वक्त भूल गई। नगर को लौटते समय दासी आभूषण के लिए लौटी। विशाखा ने पूछा—तूने कहां रखा था ? उसने कहा—गंधकुटी-परिवेण में रखने के समय से ही उसका लौटाना हमारे लिए अयुक्त है।"

आभूषण के छूटने का यह वर्णन **विनय** में भी आया है। संभवत: बुद्धासन-स्तूप के पूर्व का स्तूप G इसी के स्मरण में है। **सर जान** कहते हैं[3]—

This stupa is co-eval with the three buildings of Kushan Period, Just described (*ibid*p. 10)

यह गंधकुटी-परिवेण बहुत ही खुली जगह थी, जिसमें हजारों आदमी बैठ सकते थे। बुद्धासन-स्तूप (स्तूप H) गंधकुटी से कुछ अधिक हटकर मालूम होता है। उसका कारण यह है कि उपदेश के समय तथागत पूर्वाभिमुख बैठते थे। उनके पीछे भिक्षु-संघ पूर्व मुँह करके बैठता था और आगे गृहस्थ लोग

1 Archaeological Survey of India, 1910-11, p. 9

२ **धम्मपदट्ठकथा, ४।४४, (विसाखाया वत्थु)**

3 A. S. I. Report, 1910—1911

तथागत की ओर मुँह करके बैठते थे। गंधकुटी-पमुख से बुद्धासन तक की भूमि भिक्षुओं के लिए थी। इसका वर्णन हमें **उदान** में[1] मिलता है, जहां तथागत पाटलिगाम के नये आवसथागार में बैठने का सविस्तार वर्णन है। संभवतः यह परिवेण पहले और भी चौड़ा रहा होगा, और कम से कम बुद्धासन से उतना ही स्थान उत्तर ओर भी छूटा रहा होगा जितना कि नं० K से बुद्धासन। इस प्रकार कुषाण-काल की इमारत के स्थान पर की पुरानी इमारत, यदि कोई रही हो तो, दक्षिण तरफ इतनी बढ़ी हुई न रही होगी, अथवा रही ही न होगी।

गंधकुटी कितनी लम्बी-चौड़ी थी, यद्यपि इसके जानने के लिए कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, तथापि एक आदमी के लिए थी, इसलिए बहुत बड़ी नहीं हो सकती। संभवतः विहार नं० २ के बीच का गर्भ बहुत कुछ पुरातन गंधकुटी के आकार को बतलाता है। गंधकुटी के दर्वाजे में[2] किवाड़ लगा था, जिसमें भीतर से किल्ली (सूचीघटिक) लगाने का भी प्रबंध था। इसमें तथागतके सोने का मंच था। इस मंच के चारों पैरों के स्थान को अट्ठकथा वालों ने 'अविजहित' कहा है। गंधकुटी के दर्वाजे द्वारा कई बातों का संकेत भी होता था। **म० नि० अट्ठकथा**[2] में बुद्धघोष ने लिखा है—"जिस दिन भगवान् जेतवन में रहकर पूर्वाराम में दिन को विहार करना चाहते थे, उस दिन बिस्तरा, परिष्कार भांड़ों को ठीक-ठीक करने का संकेत करते थे। स्थविर (आनंद) झाड़ देते, तथा कचड़े में फेंकने की चीजों को समेट लेते थे। जब अकेले पिंडचार को जाना चाहते थे, तब सवेरे ही नहाकर गंधकुटी में प्रवेश कर दर्वाजा बंद कर समाधिस्थ हो बैठते थे। जब भिक्षु-संघ के साथ पिंडचार को जाना चाहते थे, तब गंधकुटी को आधी खुली रखकर । जब जनपद में विचरने के लिए निकलना चाहते थे, तो एक-दो ग्रास अधिक खाते थे और चंक्रमण पर आरूढ़ हो पूर्व-पश्चिम टहलते थे। भरहुत के जेतवन-पट्टिका में गंधकुटी के द्वार का ऊपरी आधा भाग खुला है, जिससे यह भी पता लगता है कि किवाड़ ऊपर-नीचे दो भागों में विभक्त होता

---

१ **उदान—पाटलिगामियवग्ग (८।६)**

२ **धम्मपद-अट्ठकथा ४/४४ मी।** **२ सुत्त २६।**

था। गंधकुटी का नाम यद्यपि सैकड़ों बार आता है, किन्तु उसका इससे अधिक विवरण देखने में नहीं मिलता।

द्वारकोट्ठक—हम पीछे कह चुके हैं कि अनाथपिंडक के पहली बार लाये हुए कार्षापणों से जेतवन का एक थोड़ा सा हिस्सा बिना ढँका ही रह गया था। इसे कुमार जेत ने अपने लिए माँग लिया और वहाँ उसने अपने दाम से कोठा बनवाया, जिसका नाम जेतवन-बहिर्द्वार कोष्ठक या केवल द्वारकोट्ठक पड़ा। यह गंधकुटी के सामने ही था, क्योंकि **धम्मपद-अट्ठकथा** में आता है—

"**एक समय**—अन्य तीर्थिक उपासकों ने अपने लड़कों को कसम दिलाई कि घर आने पर तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणों को न तो बंदना करना और न उनके विहार में जाना। एक दिन जेतवन विहार के बहिर्द्वार-कोष्ठक के पास खेलते हुए उन्हें प्यास लगी। तब एक उपासक के लड़के को कहकर भेजा, तुम जाकर पानी पियो और हमारे लिए भी लाओ। उसने विहार में प्रवेश कर शास्ता को बंदना कर पानी पी इस बात को कहा। शास्ता ने कहा, तुम पानी पी कर·· जाकर औरों को भी, पानी पीने के लिए यहीं भेजो। उन्होंने आकर पानी पिया। गंधकुटी के पास का कुआँ हमें मालूम है। द्वारकोष्ठक से कुएँ पर आते हुए लड़कों को गंधकुटी के द्वार पर से देखना स्वाभाविक है, यदि दर्वाजा गंधकुटी के सामने हो।

जेतवन-पोक्खरणी—यह द्वारकोट्ठक के पास ही थी। **जातकट्ठकथा** (निदान) में एक जगह इसका इस प्रकार वर्णन आता है—

एक समय कोसल राष्ट्र में वर्षा न हुई। सस्य सूख रहे थे। जहाँ-तहाँ तालाब, पोखरी और सरोवर सूख गये। **जेतवन-द्वार-कोष्टक** के समीप की जेतवन-पुष्करिणी का जल भी सूख गया। घने कीचड़ में घुसकर लेटे हुए मच्छ-कच्छपों को कौए चील आदि अपनी चोंचों से मार-मार ले जाकर, फड़फड़ाते हुओं को खाते थे। शास्ता ने मत्स्य-कच्छपों के उस दुःख को देखकर, महती करुणा से प्रेरित हो निश्चय किया—आज मुझे पानी बरसाना है।·· भोजन के बाद सावत्थी से विहार को जाते हुए जेतवन-पुष्करिणी के **सोपान** पर खड़े हो आनंद स्थविर से कहा—आनंद, नहाने की धोती ला; जेतवन-पुष्करिणी में स्नान करेंगे।···शास्ता एक छोर से नहाने की धोती को पहनकर और दूसरे

छोर से सिर को ढांक कर सोपान पर खड़े हुए। पूर्वदिशा-भाग में एक छोटी सी घटा ने उठकर···बरसते हुए सारे कोसल राष्ट्र को बाढ़ जैसा बना दिया। शास्ता ने पुष्कारिणी में स्नान कर, लाल दुपट्टा पहिन ···।

यहाँ हमें मालूम होता है कि (१) पुष्करिणी जेतवन-द्वार के पास ही थी, (२) उसमें घाट बँधा हुआ था।

इस पुष्करिणी के पास वह स्थान था, जहाँ पर देवदत्त का जीते जी पृथ्वी में समाना कहा गया है। फाहियान और युन्-च्वेङ् दोनों ही देवदत्त को जेतवन में तथागत पर विष-प्रयोग करने के लिए आया हुआ कहते हैं, किंतु **धम्मपद अट्ठकथा** का वर्णन दूसरा ही है—

देवदत्त[1] ने, नौ मास बीमार रहकर अंतिम समय शास्ता के दर्शन के लिए उत्सुक हो, अपने शिष्यों से कहा—मैं शास्ता का दर्शन करना चाहता हूँ; मुझे दर्शन करवाओ। ऐसा कहने पर–समर्थ होने पर तुमने शास्ता के साथ वैरी का आचरण किया, हम तुम्हें वहाँ न ले जायँगे। तब देवदत्त ने कहा—मेरा नाश मत करो। मैंने शास्ता के साथ आघात किया, किंतु मेरे ऊपर शास्ता को केशाग्रमात्र भी क्रोध नहीं है। वे शास्ता वधिक देवदत्त पर, डाकू अंगुलिमाल पर, धनपाल और राहुल—सब पर, एक समान भाव वाले हैं। तब वह चारपाई पर लेकर निकले। उसका आगमन सुनकर भिक्षुओं ने शास्ता से कहा । शास्ता ने कहा—भिक्षुओ! इस शरीर से वह मुझे न देख सकेगा ··। अब एक योजन-पर आ गया है, आधे योजन पर, गावुत (=गव्यूति) भर पर, जेतवन-पुष्करिणी के समीप···। यदि वह जेतवन के भीतर भी आ जाय, तो भी मुझे न देख सकेगा। देवदत्त को ले आने वाले **जेतवनपुष्करिणी** के तीर पर चारपाई को उतार पुष्करिणी में नहाने गये। देवदत्त भी चारपाई से उठ दोनों पैरों की भूमि पर रखकर वैठा। वह वहीं पृथ्वी में चला गया। वह क्रमशः घुट्टी तक, फिर ठेहुने तक, फिर कमर तक, छाती तक, गर्दन तक घुस गया। ठुड्डी की हड्डी के भूमि पर प्रतिष्ठित होते समय उसने यह गाथा कही—

---

१ ध० प० ११२। अ० क० ७४, ७५ (Commentary, Vol I, p. 147) **देवदत्तवत्थु। देखो दी० नि० सुत्त २ की अट्ठकथा भी।**

इन आठ प्राणों से उस अग्रपुद्गल (=महापुरुष) देवातिदेव, नरदम्यसाखी समतचक्षु शतपुण्यलक्षण बुद्ध के शरणागत हूँ।

वह अब से सौ हजार कल्पों बाद अट्ठिस्सर नामक प्रत्येक बुद्ध होगा।—वह पृथ्वी में घुसकर अवीचिनरक में उत्पन्न हुआ।

इस कथा में और ऐतिहासिक तथ्य चाहे कुछ भी न हो, किंतु इसमें संदेह नहीं कि देवदत्त के जमीन में धँसने की किंवदंती फाहियान के समय (पाँचवीं शताब्दी में) खूब प्रसिद्ध थी। वह उससे भी पहले की सिंहली अट्ठकथाओं में वैसे ही थी, जिसके आधार पर फाहियान के समकालीन बुद्धघोष ने पाली अट्ठकथाओं में इसे लिखा। फाहियान ने देवदत्त के धँसने के इस स्थान को जेतवन के पूर्वद्वार पर राजपथ से ७० पद पश्चिम ओर, जहाँ चिंचा के धरती में धँसने का उल्लेख किया है, लिखा है।

युन्-च्वेङ ने इस स्थान के विषय में लिखा है—

"To the east of the convent about 100 paces is a great chasm: this is where Devadatta went down alive into Hell after trying to poison Buddha. To the south of this, again is a great ditch; this is the place where the Bhikshu Kokali went down alive into Hell after slandering Buddha. To the south of this, about 800 paces, is the place where the Brahman woman Chincha went down alive into Hell after slandering Buddha. All these chasms are without any visible bottom (or bottomless pits)," (Beal, *Life of H. T.*, pp. 93 and 94).

इनमें ऐतिहासिक तथ्य सम्भवतः इतना ही हो सकता है कि मरणासन्न देवदत्त को अंत में अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ और वह बुद्ध के दर्शन के लिए गया, किन्तु जेतवन के दर्वाजे पर ही उसके प्राण छूट गये। यह मृत्यु पहले भूमि में धँसने में परिणत हुई। फाहिया ने उसे पृथ्वी के फटकर बीच में जगह देने के रूप में सुना। युन्-च्वेङ के समय वह स्थान अथाह चँदवक में परिणत हो गया। किंतु इतना तो ठीक ही है कि वह स्थान (१) पूर्वकोट्ठक के पास था; (२) पुष्करिणी के ऊपर था; (३) विहार (गंधकुटी) से १०० कदम पर था; और (४) चिंचा के धँसने का स्थान भी इसके पास ही था।

चिचा के धँसने का स्थान द्वार के बाहर पास ही में अट्ठकथा में भी आता है, किंतु कोकालिक के धँसने का कहीं जिक्र नहीं आता। बल्कि इसके विरुद्ध उसका वर्णन सुत्तनिपात में इस प्रकार है--

कोकालिक ने जेतवन में भगवान् के पास जाकर कहा--भंते, सारिपुत्त मोग्गलान पापेच्छु हैं, पापेच्छाओं के वश में हैं। भगवान् ने उसे सारिपुत्त मोग्गलान के विषय में चित्त को प्रसन्न करने के लिए तीन बार कहा, किंतु उसने तीन बार उसी को दुहराया। वहाँ से प्रदक्षिणा करके गया तो उसके सारे बदन में सरसों के बराबर फुंसियाँ निकल आईं, जो क्रमशः बिल से भी बड़ी हो फूट गईं। फिर खून और पीब बहने लगा और वह इसी बीमारी से मरा।

इसमें कहीं कोकालिक के धँसने या बुद्ध को अपमानित करने का वर्णन नहीं है। इसमें शक नहीं, इसी सुत्तनिपात की अट्ठकथा में इसी कोकालिय को देवदत्त के शिष्य कोकालिय से अलग बतलाया है, किंतु उसका भी जेतवन के पास भूमि में धँसना कहीं नहीं मिलता। चिचा के भूमि में धँसने का उल्लेख फाहियान और युन्-च्वेङ दोनों ही ने किया है। लेकिन युन्-च्वेङ ने ८८० कदम दक्षिण लिखा है, यद्यपि फाहियान ने चूहों से बंधन काटने और धँसने का स्थान एक ही लिखा है। पाली में यह कथा इस प्रकार है--

पहली बोधी[1] (५२७-१३ ई० पू०) में तीर्थिकों ने बुद्ध के लाभ-सत्कार को देखकर उसे नष्ट करने की ठानी। उन्होंने चिंचा परिव्राजिका से कहा। वह श्रावस्ती-वासियों के धर्मकथा सुनकर जेतवन से निकलते समय इंद्रगोप के समान वर्ण वाले वस्त्र को पहन गंधमाला आदि हाथ में ले जेतवन की ओर जाती थी। जेतवन के समीप के तीर्थिकाराम में वासकर प्रातः ही नगर से, उपासक जनों के निकलने पर, जेतवन के भीतर रही हुई-सी हो, नगर में प्रवेश करती थी। एक मास के बाद पूछने पर कहती थी--जेतवन में श्रमण गौतम के साथ एक गंधकुटी ही में सोई हूँ। आठ-नौ मास बाद पेट पर गोल काष्ठ बाँधकर, ऊपर से वस्त्र पहन, सायाह्न समय, धर्मोपदेश करते हुए तथागत के सामने खड़ी हो उसने कहा--"महाश्रमण, लोगों को धर्मोपदेश करते हो। मैं तुमसे गर्भ पाकर पूर्णगर्भा हो गई हूँ। न मेरे सूतिका-गृह का प्रबंध करते हो और न

१ धम्मपद--अ० क०, १३:१९

घी-तेल का। यदि आपसे न हो सके तो, अपने किसी उपस्थापक ही से—कोसलराज से, अनाथपिंडक से या विशाखा से—करा दो....।" इसपर देवपुत्रों ने, चूहे के बच्चे बन, बंधन की रस्सी को काट दिया। लोगों ने यह देख उसके सिर पर थूक कर उसे ढेले, डंडे आदि से मारकर जेतवन से बाहर किया। तथागत के दृष्टि पथ से हटने के बाद ही महापृथिवी ने फटकर उसे जगह दी।

इस कथा में तथागत के आँखों के सामने से चिंचा के अलग होते ही उसका पृथ्वी में धँसना लिखा है। बुद्ध इस समय बुद्धासन पर (स्तूप H) बैठे रहे होंगे। दर्वाजे के बहि:कोष्ठक सामने ही था। द्वार कोट्ठक के पार होते ही उसका आँखो से ओझल होना स्वाभाविक है और इस प्रकार धँसने की जगह कोट्ठक के बाहर पास ही, पुष्करिणी के किनारे हो सकती है; जिसके पास, पीछे देवदत्त का धँसना कहा जाता है। यह फाहियान के भी अनुकूल है। काल बीतने के साथ कथाओं के रूप में अतिशयोक्ति होनी स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त युन्-च्वेङ उस समय आये थे, जिस समय महायान भारत में यौवन पर था। महायान ऐतिहासिकता की अपेक्षा लोकोत्तरता की ओर अधिक झुकता है, जैसा कि महायान करुणा-पुंडरीक सूत्र आदि से खूब स्पष्ट है। इसीलिए युन्-च्वेङ की किंवदंतियाँ फाहियान की अपेक्षा अधिक अतिरंजित मिलती हैं। इसीलिए युन्-च्वेङ की कथा में चिंचा को हम ८०० कदम और दक्षिण पाते हैं। युन्-च्वेङ का यह कथन कि देवदत्त के धँसने की जगह, अर्थात् द्वार कोट्ठक के बाहर पुष्करिणी का घाट विहार (= गंधकुटी) से १०० कदम था, ठीक मालूम होता है; और इस प्रकार विहार F की पूर्वी दीवार से बिल्कुल पास ही जेतवन के द्वार कोट्ठक का होना सिद्ध होता है। फिर ४८७ नंबर वाले खेत की निचली भूमि ही जेतवन की पुष्करिणी सिद्ध होती है।

कपल्ल-पूव-पब्भार—इसमें सन्देह नहीं कि कितनी ही जगहों का आरम्भ अनैतिहासिक कथाओं पर अवलम्बित है, किन्तु इससे वैसे स्थानों का पीछे बना लिया जाना असत्य नहीं हो सकता। ऐसा ही एक स्थान जेतवन द्वार कोट्ठक में 'कपल्ल-पूव-पब्भार' था। कथा यों है—

राजगृह नगर[1] के पास एक सक्खर नाम का कस्बा था। वहाँ अस्सी करोड़

१. **धम्मपदट्ठकथा**, Vol. I, p. 373

धनवाला कौशिक नामक एक कंजूस सेठ रहता था। उसने एक दिन बहुत आगा-पीछा करके भार्या से पुआ खाने के लिए कहा। स्त्री ने पुआ बनाना आरम्भ किया। यह जान स्थविर महामोग्गलान उसी समय जेतवन से निकल कर ऋद्धिबल से उस कस्बे में सेठ के घर पहुँचे।....सेठ ने भार्या से कहा—भद्रे! मुझे पुओं की जरूरत नहीं, उन्हें इसी भिक्षु को दे दो।....स्थविर ऋद्धिबल से सेठ-सेठानी को पुओं के साथ लेकर जेतवन पहुँच गये। सारे विहार के भिक्षुओं को देने पर भी वह समाप्त हुआ-सा न मालूम होता था। इस पर भगवान् ने कहा--इन्हें जेतवन **द्वारकोट्ठक** पर छोड़ दो। उन्होंने उसे द्वार कोट्ठक के पास के स्थान पर ही छोड़ दिया। आज भी वह स्थान कपल्ल-पूव-पब्भार के ही नाम से प्रसिद्ध है।

यह स्थान भी द्वारकोष्ठक के ही एक भाग में था, और इस जगह की स्मृति में भी कोई छोटा-मोटा स्तूप अवश्य बना होगा।

जेतवन के बाहर की बातों को समाप्त कर अब हमें जेतवन के अन्दर की शेष इमारतों को देखना है। विनय के अनुसार अनाथपिंडक ने जेतवत के भीतर ये चीजें बनवाईं--विहार, परिवेण, कोठा, उपस्थान-शाला, कप्पियकुटी, पाखाना, पेशाबखाना, चक्रम (=टहलने की जगह), चंक्रमणशाला, उपदान (=प्याऊ), उदपानशाला, जंताघर (=स्नानगृह), जंताघरशाला, पुष्करिणी और मंडप। जातक-अट्ठकथा[1] (निदान) के अनुसार इनका स्थान इस प्रकार है--मध्य में गंधकुटी, उसके चारों तरफ अस्सी महास्थविरों के अलग-अलग निवासस्थान, एककुड्डक, (=एकतला), द्विकुड्डक, हंसवट्टक, दीघशाला, मंडप आदि तथा पुष्करिणी, चंक्रमण, रात्रि को रहने के स्थान और दिन को रहने के स्थान।

चुल्लवग्ग के[2] **सेवासनक्खंधक**--(६) से हमें निम्न प्रकार के गृहों का पता लगता है—

उपास्थानशाला--उस समय भिक्षु खुली जगह में खाते समय शीत से भी, उष्ण से भी कष्ट पाते थे। भगवान् से कहने पर उन्होंने कहा--मैं अनुमति देता हूँ कि उपस्थान शाला बनाई जाय, ऊँची कुरसी वाली, ईंट, पत्थर या लकड़ी से चिनकर; सीढ़ी भी ईंट, पत्थर या लकड़ी की; बाँह-आलंबन भी;

१ जातक, १।८।१८ २ विनयपिटक।

लीप-पोतकर, सफेद या काले रंग की गेरू से सँवारी, माला लता, चित्रों से चित्रित, खूंटी, चीवर-बांस चीवर-रस्सी के सहित ।

जेतवन में भी ऐसी उपस्थानशाला थी, जिसका वर्णन सूत्रों में बहुत आता है । जेतबन की वह उपस्थानशाला लकड़ी की तथा नीचे ईंटें बिछी रही होंगी।

जेतवन के भीतर हम इन इमारतों का वर्णन पाली स्रोत से पाते हैं—करेरिकुटिका, कोसंबकुटी, गंधकुटी, सललघर, करेरिमंडलमाल, करेरिमंडप, गंध-मंडलमाल, उपट्ठानशाला (= धम्मं सभा मंडप), नहानकोट्ठक, अग्गिसाला, अंबलकोट्ठक (= आसनसाला, पानीयसाला), उपसंपदा-मालक । यद्यपि सललघर जेतवन के भीतर लिखा मिलता है; किन्तु ज्ञात होता है कि जेतवन से यहाँ जेतवन-राजकाराम अभिप्रेत है और सललघर राजकाराम की ही गंधकुटी का नाम था ।

करेरिकुटिया और करेरिमंडलमाल—दीघनिकाय[1] में आता है—एक समय भगवान् जेतवन में अनाथपिंडक के आराम, करेरि कुटिका में, विहार करते थे। भोजन के बाद करेरिमंडल माल में इकट्ठा बैठे हुए बहुत-से भिक्षुओं में पूर्वजन्म सम्बन्धी धार्मिक चर्चा चल पड़ी । भगवान् ने उसे दिव्य श्रोत्र-धातु से सुना ।

इस पर टीका करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है—

करेरिवरुण वृक्ष का नाम है । करेरि वृक्ष उस कुटी के द्वार पर था, इसी लिए करेरिकुटिका कही जाती थी; जैसे कोसम्ब वृक्ष के द्वार पर होने से कोसम्ब-कुटिका । जेतवन के भीतर करेरिकुटी, कोसम्बकुटी, गंधकुटी, सललघर ये चार बड़े घर (महागेह) थे । एक-एक सौ हजार खर्च करके बनवाए गये थे । उनमें सललघर राजा प्रसेनजित् द्वारा बनवाया गया था, बाकी अनाथपिंडक गृहपति द्वारा । इस तरह अनाथपिंडिक गृहपति द्वारा स्तंभों के ऊपर बनवाई हुई देव-विमान समान करेरिकुटिका में भगवान् विहार करते थे[2] ।

---

१ दी० नि० महापदानसुत्त ।

२ दी० नि० अट्ठकथा, II. पृ० २६९—
"एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिंडिकस्स आरामे करेरिकुटिकायं । अथ खो संबहुलानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं करेरि-मंडल-माले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं पुब्बे-निवासपरिसंयुत्ता धम्मिय-कथा उदपादि —'इति पुब्बे-निवासो इति पुब्बे निवासोति' ।"

सूत्र से हमें मालूम होता है कि, जेतवन के भीतर (१) करेरिकुटिका थी, जो सम्भवत: गंधकुटी, कोसम्बकुटी की भाँति सिर्फ बुद्ध ही के रहने के लिए थी; (२) उससे कुछ हटकर करेरिमंडल काल था। बिल्कुल पास होने पर दिव्य कर्ण से सुनने की कोई आवश्यकता न थी। अट्ठकथा से मालूम होता है कि इस (३) कुटी के द्वार पर करेरिका वृक्ष था, इसी लिए इसका नाम करेरिकुटिका पड़ा था। इतना ही नहीं, कोसम्बकुटी का नाम भी द्वार पर कोसम्ब वृक्ष के होने से पड़ा था। (४) अनाथपिंडक द्वारा यह करेरिकुटी लकड़ी के खम्भों के ऊपर बहुत ही सुन्दर बनाई गई थी। करेरि मंडल माल पर टीका करते हुए बुद्ध घोष कहते हैं—"उसी करेरिमंडप[1] के अविदूर (=बहुत दूर नहीं) बनी हुई निसीदनशाला (को करेरि मंडल माल कहते हैं)। वह करेरिमंडप, गंधकुटी और निसीदनशाला के बीच में था। इसीलिए गंधकुटी भी करेरिकुटिका, और शाला भी करेरिमंडलमाल कहा जाता था।" उदान में भी—राजा प्रसेनजित् का बनवाया हुआ आराम था। यह जेतवन के बाहर होने पर 'एक बार[2] बहुत से भिक्षु करेरिमंडलमाल में इकट्ठे बैठे थे' देखा जाता है। टीका करते हुए अट्ठकथा में आचार्य धर्मपाल लिखते हैं—"करेरिवरुण[3] वृक्ष का नाम है। वह गंधकुटी, मंडप और शाला के बीच में था। इसीलिए गंधकुटी भी करेरिकुटी कही जाती थी, मंडल भी, और शाला भी करेरिमंडल-माल। प्रतिवर्ष बनने वाले घास पत्ती के छप्पर को मंडल-माल कहते हैं। दूसरे कहते हैं, अतिमुक्त आदि लताओं के मंडप को मंडल-माल कहते हैं।

यहाँ दो० नि० अट्ठकथा में 'करेरि-मंडप, गंधकुटी और निसीदन शाला के बीच में था।' उदान अट्ठकथा में 'करेरि वृक्ष गंधकुटी, मंडप और शाला के बीच में था', जिसमें 'मंडप' को 'गंधकुटी-मंडप' स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु आगे 'इसी के लिए गधकुटी भी.., मंडप भी और शाला भी..., से मालूम होता

---

१ दीघ० नि० अ० क०।

२ उदान—३।८)—"करेरिमंडलमाले सन्निसिन्नान सन्निपतितान अयं अंतराकथा उदपादि।"

३ उदानट्ठकथा, पृ० १३५

है कि यहां करेरिकुटी, करेरिमंडप, करेरिमंडल-माला ये तीन अलग चीजें हैं और इन तीनों के बीच में करेरिवृक्ष था।' लेकिन दीघनिकाय अट्ठकथा का 'वह करेरिमंडप गंधकुटी और निसीदनशाला के बीच में था'--यह कहना फिर करेरिमंडप को सदेह में डाल देता है। इससे तो मालूम होता है 'करेरिवृक्ष' की जगह पर 'करेरिमंडप' भ्रम से लिखा गया जान पड़ता है। यद्यपि इस प्रकार करेरिमंडप का होना संदिग्घ हो जाता है; तो भी इसमें संदेह नहीं कि करेरि-वृक्ष कुटी के सामने था, जिसके आगे करेरिमंडल-माल। जेतवन में सभी प्रधान इमारतें गंधकुटी की भाँति पूर्व मुँह ही थीं। करेरिकुटी के द्वार पर पूर्व तरफ एक करेरि का वृक्ष था, और उससे पूर्व तरफ (१) करेरिमंडल-माल था, जिसमें भोजनोपरांत भिक्षु इकट्ठे होकर धर्म-चर्चा किया करते थे। (२) यह मंडलमाल प्रति वर्ष फूस से छाया जाता था, इसलिए कोई स्थायी इमारत न थी।

यहाँ हमें यह कुछ भी नहीं पता लगता कि करेरिकुटी, कोसम्बकुटी और गंधकुटी से किस ओर थी। यदि हम 'करेरिकुटी, कोसम्बकुटी, गंधकुटी' इस क्रम को उनका क्रम मान लें, तो करेरिकुटी कोसंबकुटी से भी पश्चिम थी। यहाँ सललघर को इस क्रम से नहीं मानना होगा क्योंकि यह तैर्थिकों की जगह पर भी शायद समीपता के कारण उसमें ले लिया गया था। ऐसा होने पर विहार नं० ५ को हम करेरिकुटी मान सकते हैं। करेरि का वृक्ष उसके द्वार पर पूर्वोत्तर के कोने में था, और **करेरिमंडल-माल** उससे पूर्वोत्तर में।

उपट्ठानसाला (उपस्थानशाला)--खुद्दकनिकाय के उदान ग्रंथ में आता है--"एक समय[1] भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिंडक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय भोजन के बाद, उपस्थानशाला में इकट्ठे बैठे बहुत से भिक्षुओं में यह कथा होती थी। इन दोनों राजाओं में कौन बड़ा है, राजा मागध सेनिय बिंबिसार अथवा राजा प्रसेनजित् कोसल।...उस समय ध्यान से उठकर भगवान् शाम के वक्त उपट्ठानशाला में गये और बिछे आसन पर बैठे।"

---

१ "तेन खो पन समयेन उपट्ठानसालाय सन्निसिन्नान सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि।"—उदान, २-२

इसकी अट्ठकथा में आचार्य धर्मपाल लिखते हैं—

'भगवान्[१] ने...भोजनोपरांत...गंधकुटी में प्रवेश कर फलसमापत्ति-सुख के साथ दिवस-भाग को व्यतीत कर (सोचा)...अब चारों परिषद् (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) मेरे आने की प्रतीक्षा में सारे विहार को पूर्ण करती बैठी है, अब धर्मदेशना के लिए धर्म-सभा-मंडल में जाने का समय है...।'

इससे मालूम होता है कि उपस्थानशाला (१) जेतवन में भिक्षुओं के एकत्र होकर बैठने की जगह थी; (२) तथागत सायंकाल को उपदेश देने के लिए वहाँ जाते थे। अट्ठकथा से इतना और मालूम होता है—(३) इसी को धर्मसभा मंडल भी कहते थे। (४, यह गंधकुटी के पास थी; (४) सायंकाल को धर्मोपदेश सुनने के लिए भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका सभी यहाँ इकट्ठे होते थे; (५) मंडल शब्द से करेरिमंडल की भाँति ही यह भी शायद फूस के छप्परों से प्रतिवर्ष छाई जाने वाली इमारत थी; (७) ये छप्पर शायद गंधकुटी के पास वाली भूमि पर पड़े थे, इसलिए 'सारे विहार को पूर्ण करती' शब्द आया है।

गंधकुटी के पास वाले गंधकुटी-परिवेण के विषय में हम कह चुके हैं। यह गंधकुटी के सामने का आँगन था। गंधकुटी की शोभा के ढँकजाने के खयाल से इस जगह उपस्थानशाला नहीं हो सकती। यह संभवतः गंधकुटी से लगे हुए उत्तर तरफ के भू-खंड पर थी, जिसमें स्तूप नं० ८ या ९ शायद बुद्धासन के स्थान पर हैं।

स्थानकोष्ठक—अंगुत्तरनिकाय-अट्ठकथाका उद्धरण दे चुके हैं—'भोजनोपरान्तवाले कृत्य (तीसरे पहर के कृत्य—उपदेश आदि) के समाप्त होने पर, यदि बुद्ध नहाना (=गात्र धोना) चाहते थे, तो बुद्धासन से उठकर स्नानकोष्ठक में... शरीर को ऋतु-ग्रहण कराते थे।' (१) यह स्नान-कोष्ठक गंधकुटी के पास था। (२) गंधकुटी के पास का कुआं भी इसके पास ही हो सकता है। (३) यह अलग नहाने की एक छोटी-सी कोठरी रही होगी।

विहार नं० २ के कुएँ के पास वाला स्तूप K स्नानकोष्ठक का स्थान मालूम होता है, जिसके विषय में सर जान मार्शल ने लिखा है—

---

१ उदानट्ठकथा, पृ० ७२

The character is not wholly apparent. It consists of a chamber, 12' 8" square, with a paved passage around enclosed by an outer wall. The floor of the inner chamber and the passage around it are paved in the bricks of the same size 13"×9"×2½" (of Kushana period) as those used in the walls........absence of any doorway, In all probability, it was a Stupa with a relic-chamber within and a paved walk outside, and the outer wall was added at a later date......A few feet to the south west of this structure is a carefully constructed well; which appears to be a slightly later date than the building K.........The bricks are of the same size as those in the building K.........sweet and clear water......

जंताघर (=अग्निशाला) -इसके वारे में धम्मपद अट्ठकथा के वाक्य ये हैं—

सड़े शरीरवाला तिष्य[१] स्थविर अपने शिष्य आदि द्वारा छोड़ दिया गया था। (भगवान् ने सोचा) इस समय मुझे छोड़ इसका दूसरा कोई अवलंब नहीं और गंधकुटी से निकल विहारचारिका करते हुए, अग्निशाला में जा जलपात्र को धो चूल्हे पर रख जल को गर्म हुआ जान, जाकर उस भिक्षु के लेटने की खाट का किनारा पकड़ा। तब भिक्षु खाट को अग्निशाला में लाये। शास्ता ने इसके पास खड़े हो गर्म पानी से शरीर को भिगोकर मल-मल कर नहलाया। फिर वह हल्के शरीर हो और एकाग्रचित्त हो, खाट पर लेटा। शास्ता ने उसके सिरहाने खड़े हो यह गाथा कह उपदेश दिया—

"देर नहीं है कि तुच्छ, विज्ञान-रहित, निरर्थक काष्ठखंड-सा यह शरीर पृथ्वी पर लेटेगा।...देशना के अंत में वह अर्हत्व को प्राप्त हो, परिनिर्वृत्त हुआ। शास्ता ने उसका शरीर कृत्य कराकर हड्डियाँ ले चैत्य बनवाया।"

जंताघर[२] और अग्निशाल दोनों एक ही चीज हैं। चुल्लवग्ग में अग्निशाला के विधान में यह वाक्य है—

१ ध० प० ४ : ८, अ० क० १५७

५

२ 'जंताघरं त्वग्गिसाला" (अभिधानप्पदीपिका २१४)।

"अनुज्ञा[१] देता हूँ, एक तरफ अग्निशाला ..ऊँची कुर्सी की ईट पत्थर या लकडी से चुनी..., सोपान.. आलबनबाहु-सहित...।"

महावग्ग में सामणेर का कर्त्तव्य वर्णन करते हुए जंताघर के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है—

"यदि[२] उपाध्याय नहाना चाहते हों।...यदि उपाध्याय जंताघर मे जाना चाहते हों, तो चूर्ण ले जाना चाहिए मिट्टी भिगोनी चाहिए। जंताघर के पीठ (=चौकी) को लेकर उपाध्याय के पीछे-पीछे जाकर, जताघर में पीठ देकर चीवर लेकर एक तरफ रखना चाहिए। चूर्ण देना चाहिए। मिट्टी देनी चाहिए।...जल में भी उपाध्याय का परिकम करना (=मलना) चाहिए। नहाकर पहले ही निकल कर अपने गात्र को निर्जल कर वस्त्र पहनकर, उपाध्याय के गात्र से जल सम्मार्जित करना चाहिए। वस्त्र देना चाहिए, संघाटी देनी चाहिए। जंताघर के पीठ को लेकर पहले ही (निवास स्थान पर) आकर आसन ठीक करना चाहिए...।"

जंताघर का वर्णन और भी है[३]—

'अनुज्ञा देता हूँ (जंताघर को) उच्च-वस्तुक करना किवाड़ ·········· सूचिक, घटिक, तालछिद्र · धूमनेत्र छोटे जंताघर में एक तरफ अग्निस्थान, बड़े के मध्य में । (जंताघर में कीचड़ होता था इसलिए) ईट, पत्थर या—लकड़ी से गच करना,··· ···पानी का रास्ता बनाना जंताघर से··, ईट, पत्थर या लकड़ी के प्रकार से परिक्षेप करना···।" इन उद्धरणों से मालूम होता है कि (१) जंताघर संघाराम के एक छोर पर होता था। (२) यह नहाने की जगह थी। (३) ईंट पत्थर या लकड़ी की चुनी हुई इमारत होती थी। (४) उसमें पानी गर्म करने के लिए आग जलाई जाती थी, इसीलिए उसे अग्निशाला भी कहते हैं। (५) उसमें किवाड़ ताला-चाभी भी रहती थी। (६) धुंए की

---

१ "अनुजानामि भिक्खवे एकमन्तं अग्गिसाल कातुं...उच्चवत्थुकं इट्ठिका चयं सिलाचयं दारुचयं सोपान...आलंबनवाहं ।" (सेनासनक्खंध ६)

२ विनयपिटक, महा० व० p. 43.

३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, खुद्दकवत्थुक्खंधक, pp. 213-214.

आनंदबोधि–जेतवन के भीतर आनंदबोधि थी। जातकट्ठकथा में उसके लिए यह वाक्य हैं–-

"आनंद[१] स्थविर ने रोपा था, इसलिये आनंदबोधि नाम पड़ा। स्थविर द्वारा जेतवन द्वारकोष्ठक के पास बोधि (=पीपल) का रोपा जाना सारे जम्बू द्वीप में प्रसिद्ध हो गया था।"

भरहुत की जेतवनपट्टिका में भी गंधकुटी के सामने, कोसंबकुटी से पूर्वोत्तर के कोणपर, वेष्टनी से वेष्टित एक वृक्ष दिखाया गया है, जो संभवतः आनंदबोधि ही है। यद्यपि उपर्युक्त उद्धरण से यह नहीं मालूम होता कि यह पीपलका वृक्ष द्वारकोष्ठक के बाहर था या भीतर; किंतु अधिकतर इसका भीतर ही होना सम्भव है, क्योंकि ऐसा पूजनीय वृक्ष जेतवन खास के भीतर होना चाहिए। पट्टिका में भी भीतर ही लगवाया गया है, क्योंकि उसमें द्वारकोष्ठक छोड़ दिया गया है।

वड्ढमान––जेतवन के भीतर यह एक और प्रसिद्ध वृक्ष था। धम्मपदट्ठकथा में––"आनद, आज वर्द्धमान की छाया में··चित्त···मुझे वंदना करेगा।··· वंदना के समय राज-मान से आठ करीस प्रमाण प्रदेश में··दिव्य पुष्पों की घनी वर्षा होगी।" (ध० प० ५:१४, अ० क० २५०)। यह चित्त गृहपति तथागत के सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ शिष्यों में था। तथागत ने इसके बारे में स्वयं कहा है–– "भिक्षुओं, श्रद्धालु उपासक अच्छी प्रार्थना करते हुए यह प्रार्थना करे, वैसा होऊँ जैसा कि चित्त गहपति।" (अ० नि० ३-२-२-५३)।

सुंदरी–जेतवन के संबंध में एक और प्रसिद्ध घटना जो (जो अट्ठकथा और चीनी परिव्राजकों के विवरण में ही नहीं वरन् त्रिपिटक के मूलभाग उदान में भी, मिलती है) सुंदरी परिव्राजिका की है। उदान में इसका उल्लेख इस प्रकार है–

"भगवान् जेतवन[२] में विहरते थे। उस समय भगवान् और भिक्षुसंघ सत्कृत पूजित, पिंडापात, शयनासन, ग्लानप्रत्य भैषज्यों के लोभी थे, लेकिन अन्य तीर्थिक परिव्राजक असत्कृत···थे। तब वे तीर्थिक, भगवान् और भिक्षु संघ के सत्कार को न सहते हुए सुंदरी परिव्राजिका के पास जाकर बोले––

---

१ जातक, १६१

२ उदान, ४:८ (मेघियवग्ग)

'भगिनी ! ज्ञाति की भलाई करने का उत्साह रखती हो ?—मैं क्या करूँ आर्यो ! मेरा क्या नहीं कर सकती ? जीवन भी मैंने ज्ञाति के लिए अर्पित कर दिया है ।—तो भगिनी बार-बार जेतवन जाया कर ।—बहुत अच्छा आर्यो ! यह कह···,सुंदरी परिव्राजिका बराबर जेतवन जाने लगी । जब अन्य तीर्थिक परिव्राजकों ने जाना, कि बहुत लोगों ने सुंदरी·····को बराबर जेतवन जाते देख लिया, तो उन्होंने उसे जान से मारकर वहीं **जेतवन की खाई में** कुआँ खोद कर डाल दिया और राजा प्रसेनजित् कोसल के पास जाकर कहा—महाराज ! जो वह सुदरी परिव्राजिका थी, सो नहीं दिखाई पड़ती ।—तुम्हें कहाँ सन्देह है ?—जेतवन मे महाराज—तो जाकर जेतवन ढूँढो ।-तब (उन्होंने) जेतवन ढूँढकर अपने खोदे हुए परिखा के कुएँ से निकालर कर खाट पर डाल श्रावस्ती में प्रवेश कर, एक सड़क से दूसरी सड़क, एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर जाकर आदमियों को शंकित कर दिया—"देखो आर्यो ! शाक्य पुत्रीय श्रमणों का कर्म, ये अलज्जी,दु:शील, पाप धर्म, मृषावादी, अब्रह्मचारी हैं ।···इनको श्रामण्य नहीं, इनको ब्रह्मचर्य नहीं । इनका श्रामण्य, ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया है ।··कैसे पुरुष पुरुषकर्म करके स्त्री को जान से मार देगा ?"

उस समय सावत्थी में लोग भिक्षुओं को देखकर(उन्हें)असभ्य और कड़े शब्दों से फटकारते थे, परिहास करते थे···। तब बहुत से भिक्षु श्रावस्ती से··· पिंडपात करके···भगवान् के पास जाकर बोले···—इस समय भगवान् ! श्रावस्ती में लोग भिक्षुओं को देखकर असभ्य और कड़े शब्दों से फटकारते हैं···। यह शब्द भिक्षुओं ! चिरकाल तक नहीं रहेगा, एक सप्ताह में समाप्त हो, लुप्त हो जायगा·····। (और) वह शब्द चिरकाल तक नहीं रहा, सप्ताह भर ही रहा·····।"

धम्मपदअट्ठकथा में भी यह कथा आई है, वहाँ यह विशेषता है—··तब तीर्थिकों[१] ने कुछ दिनों के बाद गुंडों को कहापण देकर कहा—जाओ सुंदरी को मारकर श्रमण गोतम की गंधकुटी के पास मालों के कूड़े में डाल आओ··। राजा ने कहा-तो (मुर्दा लेकर) नगर में घूमो ।···(फिर) राजा ने सुंदरी के शरीर

---

१ ध० प०,२२-१, अ० क०, ५७१

को कच्चे श्मशान में मचान बाँधकर रखवा दिया। गुडों ने उस कहापण से शराब पीते ही झगड़ा किया (और रहस्य खोल दिया)...। राजा ने फिर तीर्थिकों को कहा—जाओ, यह कहते हुए नगर में घूमो कि यह सुंदरी हमने मरवाई...। (फिर) तीर्थिकों ने भी मनुष्य-वध का दंड पाया।

उदान में कहा है—(१) तीर्थिकों ने खुद मारा। (२) जेतवन की परिखा में कुआँ खोदकर सुंदरी के शरीर को दबा दिया। (३) सप्ताह बाद अपनी ही बदनामी रह गई। लेकिन धम्मपदअट्ठकथा में—(१) तीर्थिकों ने गुडों से मरवाया। (२) जेतवन की गंधकुटी के पास माला के कूड़े में सुंदरी के शरीर को डाल दिया। (३) धूर्तों ने शराब के नशे में भंडा फोड़ दिया। (४) तीर्थिकों को भी मनुष्य वध का दंड मिला। यहाँ यद्यपि अन्य अंशों का समाधान हो सकता है, तथापि उदानका का 'परिखा में गाड़ना' और अट्ठकथा का गंधकुटी के पास कूड़े में डालना, परस्पर विरुद्ध दिखाई पड़ते हैं। आरामों के चारों ओर परिखा होती थी, इसके लिए विनयपिटक में यह वचन है—"उस[1] समय आराम में घेरा नहीं था, बकरी आदि पशु भी पौधों का नुकसान करते थे। भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने कहा)—बाँस-वाट, कटकी-वाट, परिखा-वाट इन तीन वाटों (=रुँधान) से घेरने की अनुज्ञा देता हूँ।" यह परिखा आराम के चारों ओर होने से गंधकुटी के समीप नहीं हो सकती। दोनों का विरोध स्पष्ट ही है। ऐसे भी उदान मूल सूत्रों से सम्बन्ध रखता है, इसलिए उसकी, अट्ठकथा से अधिक प्रामाणिकता है। दूसरे उसका कथन अधिक संभव प्रतीत होता है। परिखा दूर होने से वहाँ आदमियों के आने-जाने का उतना भय न था, इसलिए खून करने का वही स्थान हत्यारों के अधिक अनुकूल था। गंधकुटी जो मुख्य दर्वाजे के पास थी। वहाँ लोगों का बराबर आना-जाना रहता था। शरीर ढाँकने भर के लिए मालाओं के ढेर का गंधकुटी के पास जमा करके रखना भी अस्वाभाविक है।

युन्-च्वेङ ने लिखा है—

Behind the convent, not for, is where the Brahmachari

---

१ विनयपिटक चुल्लवग्ग, सेनासन० ६, पृ० २५०

heretics killed women and accused Buddha of the murder, *(The Ltfe of Hiuen-Tsang*, p93).

फाहियान ने इसके लिए कोई विशेष स्थान निर्दिष्ट नहीं किया है।

परिखा—सुन्दरी के इस वर्णन से वह भी पता लगता है, कि जेतवन के चारों ओर परिखा खुदी हुई थी। इसलिये बास या काँटे की बाड़ नहीं रही होगी।

इन इमारतों के अतिरिक्त जेतवन के अन्दर पेशाबखाने, पाखाने, चंक्रमण शालाएं भी थीं; किन्तु इनका कोई विशेष उद्धरण नहीं मिलता।

जेतवन बनने का समय—जेतवन-निर्माण में दिये विनय के प्रमाण से पता लगता है कि बुद्ध को राजगृह में अनाथपिंडक ने वर्षावास के लिए निमंत्रित किया था। फिर वर्षा भर रहने के लिए स्थान खोजते हुए उसे जेतवन दिखलाई पड़ा। फिर उसने बहुत धन लगाकर वहाँ अनेक सुन्दर इमारतें बनवाई। यद्यपि सूत्र और विनय में हमें बुद्ध के वर्षावासों की सूची नहीं मिलती तो भी अट्ठकथाए इसकी पूरी सूचना देती हैं। अंगुत्तरनिकाय-अट्ठकथा (८।४।५) में यह इस प्रकार है—

वर्षा०	ई० पू०	
१	(५२७)	ऋषिपतन (सारनाथ)
२	(५२६)	राजगृह (वेलुवन)
३	(५२५)	,, ,,
४	(५२४)	,, ,,
५	(५२३)	वैशाली (महावन)
६	(५२२)	मंकुल पर्वत
७	(५२१)	तावतिंसभवन (त्रायस्त्रिंश लोक)
८	(५२०)	भर्ग (सुंसुमारगिरि = चुनार)
९	५१९)	कौशांबी
१०	(५१८)	पारिलेय्यकवनसंड
११	(५१७)	नाला
१२	(५१६)	बरंजा

वर्षा०	ई० पू०	
१३	(५१५)	चालिय पर्वत
१४	(५१४)	जेतवन
१५	(५१३)	कपिलवस्तु
१६	(५१२)	आलवी
१७	(५११)	राजगृह
१८	(५१०)	चालिय पर्वत
१९	(५०९)	चालिय पर्वत
२०	(५०८)	राजगृह
२१	(५०७)	श्रास्वती
२२	(५०६)	,,
२३	(५०५)	,,
२४	(५०४)	,,
२५	(५०३)	,,
२६	(५०२)	,,
२७	(५०१)	,,
२८	(५००)	,,
२९	(४९९)	,,
३०	(४९८)	,,
३१	(४९७)	,,
३२	(४९६)	,,
३३	(४९५)	,,
३४	(४९४)	,,
३५	(४९३)	,,
३६	(४९२)	,,
३७	(४९१)	,,
३८	(४९०)	,,
३९	(४८९)	,,

वर्षा०	ई० पू०	श्रावस्ती
४०	(४८८)	,,
४१	(४८७)	,,
४२	(४८६)	,,
४३	(४८५)	,,
४४	(४८४)	,,
४५	(४८३)	वैशाली (वेलुवगाम)

इसके देखने से मालूम होता है कि जेतवन में सर्वप्रथम वर्षावास बोधि के चौदहवें वर्ष में किया था। इसका अर्थ यह भी है कि जेतवन बना भी इसी वर्ष (५१४-५१३ ई० पू०) में था, क्योंकि विनय का कहना साफ है कि अनाथपिंडक ने वर्षावास के लिए निमंत्रित किया था और विनय के सामने अट्ठकथा का प्रमाण नहीं। यहाँ इस पर विचार करने के लिए कुछ और प्रमाणों पर विचार करना होगा।

वर्षावास के लिए जेतवन में निमंत्रित होना, इसलिए जब जेतवन को पहले गये, तो वर्षावास भी वहीं किया।

(क) कौशांबी में[1] भिक्षुओं के कलह के बाद पारिलेय्यक में जाकर रहना, वहाँ से फिर जेतवन में।

(ख) उदान[2] में एकान्त विहार के लिए पारिलेय्यक में जाना लिखा है, झगड़े का जिक्र नहीं।

---

१ कोसंबियं पिंडाय चरित्वा....संघमज्झे ठितको'व...गाथाय भासित्वा... बालककोणकारगामे....। अथ...पाचीनवंसदाये...। अथ...पारिलेय्यके...यथाभिरतं विहरित्व...अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो...सावत्थियं...जेतवने...।

—महावग्ग, कोसंबक्खन्धक १०, ४०४—४०४, पृष्ठ।

२ "भगवा कोसंबियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन भगवा आकिण्णो विहरति भिक्खुहि, भिक्खुनीहि उपासकेहि उपासिकाहि राजूहि राजमहामत्तेहि तित्थियेहि तित्थियसावकेहि आकिण्णो दुक्खं न फासु विहरति।...अथ खो भगवा ..अनामंतेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसंघं एको अदुतीयो येन परिलेय्यकं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पारिलेय्यकं

(ग) संयुत्तनिकाय[1] में एकाँत विहार का भी जिक्र नहीं। बिल्कुल चुपचाप पारिलेय्यक का चला जाना लिखा है। पीछे चिरकाल के बाद आनन्द का भिक्षुओं के साथ जाना, किन्तु हाथी आदि का वर्णन नहीं।

(घ) धम्मपदअट्ठकथा[2] में झगड़े के विस्तार का वर्णन है और महावग्ग की तरह यात्रा करके पारिलेय्यक में जाना तथा वहां वर्षावास करना। वर्षावास के वाद फिर वहां से जेतवन जाना भी लिखा है।

यद्यपि चारों जगहों की कथाओं में परस्पर कितना ही भेद है, किन्तु संयुत्त-निकाय से भी, जो निःस्सन्देह सबसे पुरातन प्रमाण है, चिरकाल तक पारिले-य्यक में वास करना मालूम होता है, क्योंकि वहाँ भिक्षु आनन्द से कहते हैं—'आयुष्मान् आनन्द ! भगवान् के मुख से धर्मोपदेश सुने वहुत दिन हुए।' संयु-त्तनिकाय के बाद उदान का नंबर है। वहाँ झगड़े का जिक्र नहीं, तोभी चिरकाल तक वहाँ रहना लिखा है। यद्यपि इन दोनों पुराने प्रमाणों में पारिलेय्यक से श्राव-स्ती जाना नहीं लिखा है, तो भी पारिलेय्यक में अधिक समय का वास वर्षावास के

तदवसरि। तत्तसुदं भगवा पारिलेय्य के विरहति रक्खितवनसंडे भद्दसालमूले। अञ्ञातरोपि खो हत्थिनागो....येन भगवा तेनुपसंकमि।"

—उदान, ४।५

१ "एकं समयं भगवा कोसंबियं विहरति घोसितारामे।...कोसंबियं पिंडाय चरित्वा...अनामंतेत्वा उपट्ठाके, अनपलोकेत्वा भिक्षुसंघं, एको अदुतीयो चारिकं पक्कामि।...एकको भगवा तस्मिं समये विहरितुकामो होति। .. अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पारिलेय्यकं तदवसरि। तत्थ सुदं पारिलेय्यके विहरति भद्दसालमूले। अथ खो संबहुला भिक्खू...आनंदं उपसंकमित्वा... चिरस्सं सुता खो नो आवुसो आनंद भगवतो सम्मुखा धम्मिकथा।... अथ खो .. आनंदो तेहि भिखूहि सद्धि येन पारिलेय्यकं भद्दसालमूलं येनभगवा तेनुपसंकमि। ...भगवा धम्मिया कथाय संदस्सेसि।"

—सं० नि, २१।८।९

२ कोसंबियं पिंडाय चरित्वा अनपलोकेत्वा भिक्खुसंघं एककोव...बालक-लोणकारगामं गंत्वा...पाचीनवंसदाये...येन पारिलेय्यकं तदवसरि...भद्दसालमूले पारिलेय्यके एकेन हत्थिना उपट्ठहियमानो फासुकं वस्सावासं वसि अनुपुब्बेन जेतवनं अगमासि।..." (ध० प०, १।५, अ० क०)

विरुद्ध नहीं जाता। विनय और पीछे के दूसरे ग्रंथों में वर्णित जेतवन-गमन से कोई विरोध नहीं है। यहाँ, हाथी की सेवा की कथा संयुत्तनिकाय के बाद उदान के समय में गढ़ी गई मालूम होती है। पारिलेय्यक से वर्षा के बाद जेतवन में जाना निश्चित मालूम होता है। पारिलेय्यक का वर्षावास ऊपर की सूची में बोधि से दसवें वर्ष (५१८ ई० पू०) में है। अतः इससे पूर्व ही जेतवन बना था। बोधि-प्राप्ति के समय तथागत की आयु ३५ वर्ष की थी संयुत्तनिकाय में राजा प्रसेनजित से, संभवतः पहली, मुलाकात होने का इस प्रकार वर्णन आया है—

"भगवन्...जेतवनत में विहरते थे। राजा प्रसेनजित् कोसल...भगवान् के पास जा सम्मोदन करके एक तरफ बैठ गया।...फिर भगवान् से कहा। आप गोतम भी—'हमने अनुत्तर सम्यक् संबोधि को प्राप्त कर लिया'—यह प्रतिज्ञा करते हैं?—जिसको महाराज! अनुत्तर सम्यक्-संबुद्ध हुआ कहें, ठीक कहते हुए वह मुझे ही कहे।...हे गोतम! जो भी संघी, गणी, गणाचार्य, ज्ञात, यशस्वी तीर्थंकर, बहुत जनों द्वारा साधु-सम्मत हैं...जैसे—पूर्ण काश्यप, मंखलि, गोसाल, निगंठ नाथपुत्त, संजय वेलट्ठिपुत्त, पकुध कच्चायन, अजित केसकंबल, वह भी पूछने पर 'अनुत्तर सम्यक् संबोधि को जान गये', यह दावा नहीं करते। फिर क्या कहना है, आप गोतम तो जन्म से दहर (=तरुण) हैं, प्रव्रज्या से भी नये हैं।.....भगवान् आज से मुझे अपना शरणागत उपासक.....धारण करे[१]।"

यहाँ राजा प्रसेनजित् जेतवन में जाकर, निग्रंथ ज्ञातृ-पुत्र (महावीर) आदि का यश वर्णन करके, तथागत को उमर में कम और नया साधु हुआ कहता है। इससे मालूम होता है कि तथागत अभिसंबोधि (३५ वर्ष की आयु) के बहुत देर बाद श्रावस्ती नहीं गये थे। उस समय जेतवन बन चुका था। 'दहर' कहने के लिए हम ४५ वर्ष की उम्र तक की सीमा मान सकते हैं। इस प्रकार पुराने सुत्तंत के अनुसार भी अभिसंबोधि से दसवें वर्ष (५१९ ई० पू०) से पूर्व ही जेतवन बन चुका था।

---

१ संयुत्तनिकाय, पृ० २३

महावग्ग में राजगृह से कपिलवस्तु, फिर वहां से श्रावस्ती जेतवन जाने का वर्णन आया है—

"भगवान्[1] राजगृह में...बिहार करके...चारिका चरण करते हुए... शाक्य देश में कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार करते थे।...... फिर भगवान् पूर्वाह्न समय...पात्र चीवर लेकर जहाँ शुद्धोधन शाक्य का घर था वहाँ गये, और रखे हुए आसन पर बैठे। तब राहुलमाता देवी ने राहुल कुमार से कहा। राहुल! यह तेरा पिता है, जा दाय्यज माँग।...राहुल कुमार यह कहते हुए भगवान् के पीछे-पीछे हो लिया—'श्रवण, मुझे दायज्च दो', 'श्रमण, मुझे दायज्ज दो'। तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र से कहा—तो सारिपुत्त तू राहुल कुमार को प्रव्रजित् कर...। फिर भगवान् कपिलवस्तु में इच्छानुसार विहार कर श्रावस्ती की ओर चारिका के लिए चल दिये। वहाँ...अनाथपिंडक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्तके उपस्थाककुल ने एक लड़के को आयुष्मान् सारिपुत्र के पास प्रव्रज्या देने के लिये भेजा। आयुष्मान् सारिपुत्र के चित्त में हुआ, भगवान् ने प्रज्ञप्त किया है, एक को, दो सामणेर अपनी सेवा में न रखना चाहिए। और यह मेरा राहुल सामणेर है ही। अट्ठकथा से स्पष्ट है कि यह यात्रा बोधि के दूसरे वर्ष में अर्थात् गया से वाराणसी ऋषि-पतन, वहाँ से राजगृह आकर फिर कपिलवस्तु जाना। इस प्रकार ५२६ ई० पू० में जेतवन मौजूद मालूम होता है।

जातकट्ठकथा में इसे इस तरह संक्षिप्त किया है—शास्ता बुद्ध होकर प्रथम वर्षा० ऋषिपतन में बसकर,... उरुवेला को जा वहाँ तीन मास बसे...भिक्षु संघसहित पोष की पूर्णिमा का राजगृह में पहुँच दो मास ठहरे। इतने में[2] वाराणसी से निकले पाँच मास हो गये।...फाल्गुण पूर्णिमा को उस (=उदायि) ने सोचा...अब यह (यात्रा का) समय है...। राजगृह से निकल कर प्रतिदिन एक योजन चलते थे।... (इस प्रकार) राजगृह से ६० योजन कपिलवस्तु दो मास में पहुँचे। .. (वहाँ से) भगवान् फिर लौटकर राजगृह जा, सीतवन में

१ जातक, निदान।

२ महावग्ग (सिंहललिपि), ३९१-९३

ठहरे। उस समय अनाथपिंडक गृहपति...अपने प्रिय मित्र राजगृह के सेठ के घर जा, बुद्धोत्पत्ति सुन...शास्ता के पास जा धर्मोपदेश सुन...द्वितीय दिन बुद्ध संघ को महादान दे, श्रावस्ती आने के लिये शास्ता की प्रतिज्ञा ले...।

यहाँ विनय से जातकट्ठकथा का, कपिलवस्तु से आगे जाने के स्थान में विरोध है। जातकट्ठकथा के अनुसार बुद्ध वहाँ से लौट कर फिर राजगृह आये। लेकिन विनय के अनुसार राहुल को प्रव्रजित कर वे श्रावस्ती जेतवन पहुंचे। जातक के अनुसार बुद्ध की कपिलवस्तु की यात्रा बोधि से दूसरे वर्ष (५२६ ई० पू०) की फाल्गुन-पूर्णिमा को आरम्भ हुई, और वे दो मास बाद वैशाख पूर्णिमा को वहाँ पहुँचे। वहां से फिर लौट कर राजगृह आकर वहीं उन्होंने वर्षा वास किया जो ऊपर की सूची से स्पष्ट है। यहीं सीतवन में अनाथपिंडक का जातक-अट्ठकथा के अनुसार श्रावस्ती आने की प्रतिज्ञा लेना, विनय के अनुसार वर्षा-वास के लिए निमंत्रण स्वीकार कराना होता है। इस प्रकार तथागत का जाना द्वितीय वर्षावास के बाद (५२६-५२५ ई० पू०) हो सकता है।

अब यहाँ दो बातों पर ही हमें विशेष विचार करना है—(१) विनय के अनुसार कपिलवस्तु से श्रावस्ती जाना और वहां जेतवन में ठहरना। (२) जातक अ० के अनुसार कपिलवस्तु से राजगृह लौट आना, और संभवत: वर्षा-वास के बाद दूसरे वर्ष जेतवन में विहार तैयार हो जाने पर वहाँ जाना। यद्यपि विनय ग्रंथ की प्रामाणिकता अट्ठकथा से अधिक है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि कपिलवस्तु के जाने से पहले अनाथपिंडक तथागत से मिलने नहीं आता; इसीलिये कपिलवस्तु से श्रावस्ती जाकर जेतवन में ठहरना बिल्कुल ही संभव नहीं मालूम पड़ता। इसके विरुद्ध जातक का वर्णन सीतवन के दर्शन के (द्वितीय वर्षा० के) बाद जाना अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है। विनय ने स्पष्ट कहा है कि अनाथपिंडक ने वर्षावास के लिए निमंत्रण दिया और इसी-लिए तीन मास के निवास के लिए जेतवन के झटपट बनवाने की भी अधिक जरूरत पड़ी; इस प्रकार तथागत जेतवन गये और साथ ही वहीं उन्होंने वर्षा-वास भी किया—यह अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। यद्यपि वर्षावासों की सूची में तीसरा वर्षावास राजगृह में लिखा है, तो भी जेतवन बोधि के और तीसरे वर्ष के बीच (५२६-५२५ ई० पू०) में बना जान पड़ता है।

पहिले दिये अट्ठकथा के उद्धरण से मालूम होता है कि तीर्थिकों ने जेतवन के पास तीर्थिकाराम प्रथम बोधि अर्थात् बोधि के बाद प्रथम पंद्रह वर्षों (५२७-५१३ ई० पू०) में बनाना आरंभ किया था। इससे निश्चित ही है कि उस (२१३ ई० पू०) से पूर्व जेतवन बन चुका होगा।

ऊपर दी गयी वर्षावास की सूची के अनुसार प्रथम वर्षावास श्रावस्ती में बोधि से चौदहवें साल (५१४ ई० पू०) में किया। चूंकि अनाथपिंडक का निमंत्रण वर्षावास के लिये था, इसलिए यह भी जेतवन बनने का साल हो सकता है।

सांतवाँ वर्षावांस त्रयस्त्रिंस-लोक में बतलाया जाता है। उस वर्ष आषाढ़ पूर्णिमा (बुद्धचर्या पृष्ठ ८५) के दिन तथागत श्रावस्ती जेतवन में थे। इस प्रकार इस समय (५२१ ई० पू०) जेतवन बन चुका था।

सारांश यह कि जेतवन बनने के सात समय हमें मिलते हैं—

(१)	सोलहवें वर्ष	(५१२ ई० पू०)	से पूर्व,	(अट्ठकथा)	पृ० २५९।
(२)	पंद्रहवें "	(५१३ ई० पू०)	" पूर्व,	(अट्ठकथा)	पृ० २९४।
(३)	दसवें "	(५१८ ई० पू०)	" पूर्व,	(विनय सूत्र)	पृ० २९६।
(४)	" "	"	" "	(सूत्र)	पृ० २९८।
(५)	सातवें "	(५२१ ई० पू०)	" पूर्व,	(अट्ठकथा)	पृ० २९९।
(६)	द्वितीय "	(५२० ई९ पू०)	" "	(विनय)	पृ० २९९।
(७)	तृतीय "	(५२५ ई० पू०)	" "	(अट्ठकथा)	पृ०, ३००।

इनमें पहले पाँच से हमें यही मालूम होता है कि उक्त समय से पूर्व किसी समय जेतवन तैयार हुआ, इसलिये उनका किसी से विरोध नहीं है।

पूर्वाराम

जेतवन के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान पूर्वाराम था। पहले हम पूर्वाराम की स्थिति के बारे में संक्षेप से विचार कर चुके हैं। पूर्वाराम और पूर्वद्वार के सम्बन्ध में संयुत्तनिकाय[१] और उदान[२] के इस उद्धरण से कुछ प्रकाश पड़ता है।

"भगवान्...पूर्वाराम में...सायंकाल ध्यान से उठकर बाहरी द्वार के कोठे के बाहर बैठे थे।...(उस समय) राजा प्रसेनजित भगवान् के पास पहुँचा।...

१ ३३।२।१, पृ० २४; अ० क० २१६

उस समय सात जटिल, सात निगंठ, सात अचेलक, सात एकसाटक और सात परिव्राजक, नख, लोम बढ़ाए अनेक प्रकार की खारिया लेकर भगवान् के अविदूर से जाते थे। तब राजा···आसन से उठकर, उत्तरासंग को एक कंधे पर कर, दाहिने घुटने को भूमि पर रख, उन सातों···की ओर अंजलि जोड़ तीन बार नाम सुनाने लगा—भंते ! मैं राजाप्रेसनजित कोसल हूँ···।"

इसपर अट्ठकथा—"बाहरी द्वार का कोठा—प्रासाद—द्वारकोट्ठक के बाहर, विहार के द्वारकोट्ठक से बाहर का नहीं। वह प्रासाद लौहप्रासाद की भाँति चारों ओर चार द्वारकोट्ठकों में युक्त प्राकार से घिरा था। उसमें से पूर्व द्वारकोट्ठ के बाहर प्रासाद की छाया में पूर्व दिशा की ओर मुंह करके··· बैठे थे। अविदूर से, अर्थात् अविदूर मार्ग से नगर (=श्रावस्ती) में प्रवेश करते थे।"

इसमें हमें निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं—

(१) पूर्वाराम के प्रासाद के चारों ओर चार फाटकों वाली चहारदीवारी थी।

(२) अनुराध पुर का लौहप्रासाद और पूर्वाराम का प्रासाद कई अंशों में समान थे। संभवत: पूर्वाराम के नमूने पर ही लौहप्रासाद बना था।

(३) इसके चारों तरफ चार दर्वाजे थे।

(४) (जाड़े में) सायंकाल को पश्चिम द्वार के बाहर बैठकर प्राय: तथागत धूप लिया करते थे।

(५) वहां राजा प्रसेनजित् तथा दूसरे संभ्रांत व्यक्ति भी उपस्थित होते थे।

(६) उसके पास ही से मार्ग था।

(७) इस स्थान से नगर का पूर्वद्वार बहुत दूर न था, क्योंकि जटिलों के दिए 'नगर को जाते थे' न कहकर 'नगर में प्रवेश करते थे' कहा है।

(८) संभवत: पूर्वाराम[1] की ओर भी जटिल, निगंठ (=जैन), अचेलक, एकसाटक और परिव्राजक साधुओं के विहार थे, जहाँ से वे नगर में जा रहे थे।

पहले यह बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार विशाखा का 'महालता

---

१ वर्तमान हनुमनवां।

आभूषण' एक दिन जेतवन में छूट गया था। विशाखा ने तथागत से कहा—"भंते[१] ! आर्य आनंद ने मेरे आभूषणों को हाथ लगाया…। उसको देखकर, (उसके मूल्य से) चारों प्रत्ययों में कौन प्रत्यय ले आऊँ ? विशाखा ! पूर्वद्वार पर, संघ के लिए वासस्थान बनाना चाहिए। अच्छा भंते! यह कहकर तुष्ट-मानसा विशाखा ने नव करोड़ में भूमि ही खरीदी। अन्य नव करोड़ से विहार बनाना आरंभ किया…। एक दिन अनाथपिंडक के घर भोजन करके शास्ता उत्तर द्वार की ओर गये। उत्तर द्वार जाते हुए देख चारिका को जाएँगे… यह सुन… विशाखा ने जाकर…कहा—भंते ! कृताकृत जानने वाले एक भिक्षु को लौटाकर (=देखकर) जायें।—तो वैसे (भिक्षु) का पात्र ग्रहण कर।…विशाखा ने ऋद्धिमान समझ महामोग्गलान का पात्र पकड़ा।…उनके अनुभव से पचास-साठ योजन पर वृक्ष और पाषाण के लिए आदमी जाते थे। बड़े-बड़े पाषाणों और वृक्षों को लेकर उसी दिन लौट आते थे।…जल्दी ही दो-महला प्रासाद बना दिया गया। निचले तल पर पाँच सौ गर्भ (=कोठरियाँ) और ऊपर की भूमि (=तल) पर पाँच सौ गर्भ, (कुल) एक हजार गर्भों से सुशोभित …था। शास्ता नौ मास चारिका करके फिर श्रावस्ती आये। विशाखा के प्रासाद में भी काम नौ मास में समाप्त हुआ। प्रासाद के कूट को ठोस साठ जल घड़े के बराबर लाल स्वर्ण से बनवाया। शास्ता जेतवन को जा रहे हैं, यह सुन (विशाखा ने) आगे जा, शास्ता को अपने विहार में लाकर…। उसकी एक सहायिका हजार मूल्य वाले एक वस्त्र को ले आकर—सहायिके ! तेरे प्रासाद में मैं इस वस्त्र का फर्श बिछाना चाहती हूँ; बिछाने का स्थान मुझे बतलाओ। वह उससे कम मूल्य वाले वस्त्र को न देख रोती हुई खड़ी थी। तब आनंद स्थविर ने कहा—सोपान और पैर धोने के स्थान के बीच में पादपुंछन करके बिछा दो।…विहार की भूमि को खरीदने में नौ करोड़, विहार बनवाने में नौ और विहार के उत्सव में नौ, इस प्रकार सब सताइस करोड़ उसने बुद्ध शासन में दान किया। स्त्री होते, तथा मिथ्या-दृष्टि के घर में बसने वाली का इस प्रकार का त्याग (किसी का) नहीं है।"

इससे मालूम होता है—

१ ध० प०, ४–८; अ० क०, १९९, ३८-३९

(९) पूर्वाराम ९ मास में बना था।

(१०) मोग्गलान बनाने में तत्त्वावधायक थे।

(११) मकान बनवाने में कुल खर्च २७ करोड़ हुआ।

(१२) यह दो-महला था। प्रत्येक तल में ५०० गर्भ थे।

विनयपिटक में है—

"विशाखा[१]···संघ के लिये आलिंद (=बरामदा)—सहित, हस्तिनख प्रासाद बनवाना चाहती थी।"

इससे—

(१३) वह बरामदा सहित था।

(१४) वह हस्तिनख प्रासाद था।

संमुत्तनिकाय में—

"भगवान[२]···पूर्वाराम में...सायंकाल को...पीछे की ओर धूप में पीठ तपाते बैठे हुए थे। आयुष्मान् आनंद भगवान् के पास गये।.. और हाथ से भगवान् के शरीर को रगड़ते हुए बोले—आश्चर्य है भंते! अब भगवान्...का छवि-वर्ण उतना परिशुद्ध नहीं रहा। गात्र शिथिल हैं, सब झुर्रियाँ पड़ गईं हैं। शरीर सामने झुका हुआ है। चक्षु...(आदि इंद्रियों में भी विपरीतता दिखलाई पड़ती है।"

इस पर अट्ठकथा में है—"प्रासाद पूर्व ओर छाया से ढंका था, इसीलिये प्रासाद के पश्चिम-दिशा भाग में धूप थी। उस स्थान पर···बैठे थे।...यह हिम पड़ने का शीत समय था। उस वक्त महाचीवर को उतार कर सूर्य किरणों से पीठ को तपाते हुए बैठे थे।"

इनसे ये बातें और मालूम होती हैं—

(१५) उस समय तथागत के शरीर में झुर्रियाँ पड़ गईं थीं, आँखों आदि की रोशनी में अंतर आ गया था।

(१६) प्रधान द्वार पूर्व ओर था, तभी 'पीछे की ओर' कहा गया है।

संयुत्तनिकाय ही में हैं—

---

१ विनयपिटक चुल्लवग्ग, सेनासनक्खंधक–६   २ सं० नि०, ५।६।२६

"मोग्गलान[१] ने···पैर के अँगूठे से मिगार माता के प्रासाद को हिलाया। ...उन भिक्षुओं ने (कहा)...यह मिगारमाता का प्रासाद गंभीरनेम, सुनिखात, अचल, असंप्रकम्प्य है...।"

अट्ठकथा ने गंभीरनेम का अर्थ 'गंभीर भूमिभाग में प्रतिष्ठित' किया है। और 'सुनिखात' का, कूटकर अच्छी तरह स्थापित।

इनसे--

(१७) पूर्वाराम ऊँची और दृढ़ भूमि में बनाया गया था।

(१८) "कूटकर गाड़ा गया था" से खंभों को गाड़कर, लकड़ियों का बना मालूम होता है।

मज्झिमनिकाय में--

"हे गौतम, जिस[२] प्रकार इस मिगारमाता के प्रासाद में अंतिम सोपान कलेवर तक अनुपूर्व क्रिया देखी जाती है...।"

अट्ठकथा में--

"प्रथम सोपान फलक[३] तक, एक ही दिन में सात महल का प्रासाद नहीं बनाया जा सकता। वस्तु शोधनकर स्तंभ खड़ा करने से लेकर चित्रकर्म करने तक अनुपूर्व क्रिया।"

इससे भी--

(१९) वह प्रासाद सात महल का था, जो (१२) से बिल्कुल विरुद्ध है और बतलाता है कि किस प्रकार बातों में अतिशयोक्ति होती है।

(२०) मकान बनाने में पहले भूमि को बराबर किया जाता था, फिर खंभे गाड़े जाते थे,...अंत में चित्रक्रम होता था।

मज्झिमनिकाय में ही--

"जिस[४] प्रकार आनंद! यह मिगारमाता का प्रासाद हाथी, गाय, घोड़ा-घोड़ी से शून्य है, सोना-चाँदी से शून्य है; स्त्री-पुरुष-सन्निपात से शून्य है।" इसकी अट्ठकथा में लिखा है--

---

१ ५०।२।४। २ म० नि०, ३।१।७, गणक-मोग्गलानसुत्त, १०७
२ अ० क०, ८५५ ४ म० नि०, ३।२।७, चूल सुञ्ञतासुत्त, १२१

"वहाँ काष्ठ-रूप[1], पुस्त-रूप, चित्र-रूप में बने हाथी आदि हैं। वैश्रवण मांधाता आदि के स्थित्त स्थान पर चित्रकर्म भी किये गये हैं। रत्नपरिसेवित जँगले, द्वार बंध, मंच, पीठ आदि रूप से स्थित, तथा जीर्ण प्रतिसंस्करणार्थ रखा हुआ सोना-चाँदी है। काष्ठरूपादि के रूप में, तथा प्रश्न पूछने आदि के लिये आने वाले स्त्री-पुरुष हैं। इसलिये वह (मिगारमातुप्रासाद) उनसे शून्य है, का अर्थ है—इंद्रिययुक्त जीवित हाथी आदि का, तथा इच्छानुसार उपभोग योग्य सोने-चाँदी का, नियमपूर्वक बसने वाले स्त्री-पुरुषों का अभाव।"

इनसे—

(२१) वह सोने-चाँदी से शून्य था। अट्ठकथा की इस पर की लीपापोती सिर्फ यही वतलाती है कि कैसे पीछे भिक्षुवर्ग चमक-दमक के पीछे पड़कर व्याख्या किया करता था।

दीघनिकाय की अट्ठकथा में—

"(विशाखा)[2] दशवल की प्रधान उपस्थायिका ने आभूषण को देकर नव करोड़ से...करीस भर भूमिपर प्रासाद बनवाया। उसके ऊपरी भाग में ५०० गर्भ, निचले भाग में ५०० गर्भ, १००० गर्भों से सुशोभित। वह प्रासाद खाली नहीं शोभा देता था, इसलिए उसको घेरकर, साढ़े पाँच सौ घर, ५०० छोटे प्रासाद और ५०० दीर्घशालाएँ बनवाईं...। अनाथपिंडक ने...श्रावस्ती के दक्षिण भाग में **अनुराधपुर** के **महाविहार** सदृश स्थान पर जेतवन महाविहार को बनवाया। विशाखा ने श्रावस्ती के पूर्व भाग में **उत्तमदेवी** विहार के समान स्थान पर पूर्वाराम को बनवाया। भगवान् ने इन दो विहारो में नियमित रूप से निवास किया (वह) एक वर्षा जेतवन में व्यतीत करते थे, एक पूर्वाराम में।"

(२२) विहार एक करीस अर्थात् प्रायः ३ एकड़ भूमि में बना था।

(२३) चारों ओर हजारों घरों, छोटे प्रासादों, दीर्घशालाओं का लिखना अट्ठकथाकारों का अपना काम मालूम होता है।

---

१ अ० क०। रूप-मूर्त्ति।

२ दी० नि, आनञ्ञसुत्त २०, अ० क० पृ० १४। मं० नि० अ० क० १।७।२ मी।

(२४) अनुराधनुर में भी जेतवन और पूर्वाराम का अनुकरण किया गया था। पूर्बाराम श्रावस्ती के उसी प्रकार पूर्व तरफ था, जैसे अनुराधपुर (सिंहल) में उत्तरदेवी विहार।

जिस प्रकार सुदत्तसेठ का नाम अनाथपिंडक प्रसिद्ध है; उसी प्रकार विशाखा मिगारमाता के नाम से प्रसिद्ध है। नाम से, मिगार विशाखा का पुत्र मालूम होगा, किन्तु बात ऐसी नहीं है, मिगारसेठ विशाखा का ससुर था। इस नाम के पड़ने की कथा इस प्रकार है—

"विशाखा[1]...अंगराष्ट्र (भागलपुर, मुंगेर जिले) के भद्दिय (=मुंगेर) नगर में मेंड़क सेठ के पुत्र धनंजय सेठ की अग्रमहिषी सुमना देवी के कोख मे पैदा हुई...! बिंबिसार राजा के आज्ञा-प्रवर्तित स्थान (अंग-मागध) में पाँच अतिभोग व्यक्ति जोतिय, जटिल, मेंड्क, पुण्णक, और काकवलिय थे...। श्रावस्ती में कोसल राजा ने बिंबिसार के पास संदेश भेजा...हमको एक महाधनी कुल भेजो।...राजा ने...धनंजय को...भेजा। तब कोसल राजा ने श्रावस्ती से सात योजन के ऊपर साकेत (अयोध्या) नगर में श्रेष्ठी का पद देकर (उसे) बसा दिया। श्रावस्ती में मिगारसेठ का पुत्र पूर्णवर्द्धनकुमार वयः प्राप्त था।... मिगार सेठ (बारात के साथ) कोसल राजा को लेकर गया।...चार मास (उन्होंने वहीं) पूरे किये।...(धनंजय सेठ ने विशाखा को) उपदेश देकर दूसरे दिन सभी श्रेणियों को इकट्ठा करके राजसेना के बीच में आठ कुटुंबियों को जमीन देकर—'यदि गये हुए स्थान पर मेरी कन्या का कोई दोष उत्पन्न हो, तो तुम उसे शोधन करना'— कहकर नौ करोड़ मूल्य के 'महालता' आभूषण से कन्या को आभूषित कर, स्नान चूर्ण के मूल्य में ५४ सौ गाड़ी धन दे..। मिगारसेठी ने...सातवें दिन...नंगे श्रमणकों को बैठाकर, (कहा)—मेरी बेटी आवे, अर्हतों की वंदना करे...। वह...उन्हें देख.. 'धिक्-धिक्' निंदा करती चली गई। ...नंगे श्रमणों ने सेठ की निंदा की......क्यों गृहपति! दूसरी नहीं मिली ? श्रमण गोतम की श्राविका (शिष्या) महाकालकर्णी को किस लिये इस घर में प्रवेश कराया ?... (सेठ) आचार्यों ! बच्ची है...आप चुप रहें—यह कह नंगों को बिदाकर।

१ अं० नि०, १।७।२, अ०क० २१९

आसन पर बैठ सोने की कर्छुल लेकर विशाखा द्वारा परोसे (खाद्य को) भोजन करता था।...उसी समय एक मधूकरी वाला भिक्षु घर के द्वारपर पहुँचा...। वह ...स्थविर को देखकर भी...नीचे मुँहकर पायस को खाता ही रहा। विशाखा ने...स्थविर से (कहा) - माफ करें भंते ! मेरा ससुर पुराना खाता है। उस (सेठ) ने अपने आदमियों से कहा, ..इस पायस को हटाओ, इसे (=विशाखा को) भी इस घर से निकालो। यह ऐसे मंगल घर में मुझे अशुचिखादक बना रही है...। विशाखा ने...कहा—तात ! इतने वचन मात्र से मैं नहीं निकलती। मैं कुंभदासी की भाँति पनघट से तुम्हारे द्वारा नहीं लाई गई हूँ। जीते माँ-बाप की लड़कियाँ इतने मात्र से नहीं निकला करतीं,...आठों कुटुंबिकों को बुलाकर मेरे दोषादोष की शोध कराओ...। सेठ ने आठ कुटुंबिकों को बुलाकर कहा-यह लड़की सप्ताह भी न परिपूर्ण होते, मंगल घर में बैठे हुए मुझे अशुचि-खादक बतलाती है।...ऐसा है अम्म! —तातो! मेरा ससुर अशुचि खाने की इच्छा वाला होगा, मैंने ऐसा करके नहीं कहा; एक पिंडपातिक स्थविर के घर-द्वार पर स्थिति होने पर यह निर्जल पायस भोजन करते हुए, उसका ख्याल (मन में) नहीं करते थे। मैंने इसी कारण से— माफ करो भंते! मेरा ससुर इस शरीर से पुण्य नहीं करता, पुराने पुण्य को खाता है',...कहा आर्य, दोष नहीं है, हमारी बेटी तो कारण कहती है, तुम क्यों क्रुद्ध होते हो।...(फिर कुछ और इलजामों के जाँच करने पर) वह और उत्तर न दे, अधोमुख हो बैठ गया। फिर कुटुंबिकोंने उससे पूछा—-क्यों सेठ, और भी दोष हमारी बेटी का है?—-नहीं आर्यो !—-क्यों फिर निर्दोष को अकारण घर से निकलवाते हो ? उस समय विशाखा ने कहा— पहले मेरे ससुर के वचन से मेरा जाना ठीक न था। मेरे आने के दिन मेरे पिता ने दोष-शोधन के लिए तुम्हारे हाथ में रख कर (मुझे) दिया था। अब मेरा जाना ठीक है। यह कह, दासी दासों को यान तैयार करने के लिए आज्ञा दी। तब सेठ ने उन कुटुंबिकों को लेकर कहा—अम्म! अनजाने मेरे कहने को क्षमा कर। तात, तुम्हारे ज्ञंतव्य को क्षमा करती हूँ; किन्तु मैं बुद्धशासन में अनुरक्त कुल की बेटी हूँ; हम बिना भिक्षुसंघ नहीं रह सकते। यदि अपनी रुचि के अनुसार भिक्षु संघ की सेवा करने पाऊँ, तो रहूँगी।—-अम्म ! तू अपनी रुचि के अनुसार अपने श्रमणों की सेवा कर।

तब विशाखा ने निमंत्रित कर दूसरे दिन…बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को बैठाया।… मेरा ससुर आकर दशवल को परो से (यह खबर भेजी)।…(मिगार सेठ जाकर कनात से बाहर ही बैठा।…देशना के अंत में सेठ ने सोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हो कनात को हटा…'पंचाग से बंदनाकर, शास्ता के सामने ही—'अम्म! तू आज से मेरी माता है'—यह कह विशाखा को अपनी माता के स्थान पर प्रतिष्ठित किया तभी से विशाखा 'मिगार माता' प्रसिद्ध हुई।"

स्थान को देखने पर हनुमनवां पूर्वाराम मालूम होता है।

तीर्थिकाराम

समयप्पवादक-परिव्याजकाराम—पहिले[1] पाँच प्रकार के अन्य तीर्थिक —जटिल, निग्रंथ आदि बतलाए हैं। अचेलक एकदम नंगे रहते थे। अट्टकथा में—एक दिन भिक्षुओं ने निग्रंथों को देखकर कथा उठाई—आवुसो! सब तरह बिना ढँके हुए अचेलकों से यह निग्रंथ (=जैन) श्रेष्ठतर हैं, जो एक अगला भाग भी तो ढांकते हैं, मालूम होता है ये सलज्जं हैं। यह सुन निग्रंथों ने कहा —"इस कारण से नहीं ढँकते हैं, पाँशु धूलि भी तो पुद्गल (=जीव) ही है। प्राणी हमारे भिक्षा-भाजन में न पड़ें, इस वजह से ढँकते हैं।" एकशाटक और परिव्राजकों का जिक्र कर चुके हैं। इन सभी मतों के साधुओं के आराम श्रावस्ती के बाहर फैले हुए थे। ये अधिकतर श्रावस्ती के दक्षिण और पूर्व तरफ में रहे होंगे, जिधर कि पूर्वाराम और जेतवन थे। चिंचा और सुंदरी के वर्णन से भी पता लगता है, कि जेतवन की ओर तीर्थिकों के भी स्थान थे। इनमें **समयप्पवादिक तिदुकाचीर एकसालक** मल्लिका का आराम बहुत ही बड़ा था। हमने इसको **चीरेनाथ** के मंदिर की जगह पर निश्चित करने के लिए कहा है। दीघनिकाय में कहा है—"पोट्ठपाद[2] परिव्राजक समयप्पवादक…मल्लिका के आराम में तीस सौ परिव्राजकों की बड़ी परिषद् के साथ निवास करता था।" अ० क० में—उस स्थान पर चंक, तारुक्ख, पोक्खरसाति, "आदि ब्राह्मण, निग्रंथ, अचेलक

१ ध० प० २२।८, अ० क० ५७८

२ दी० नि०, ९

परिव्राजक आदि प्रव्रजित एकत्रहो अपने-अपने समय (=सिद्धान्त) का व्याख्यान करते थे; इसीलिये वह आराम समयप्पवादक (कहा जाता था)...।"

"मज्झिनिकाय में—

"समणमंडिकापुत्र उग्गहमाण परिव्राजक समयप्पवादक...मल्लिक के आराम में सात सौ परिव्राजकों कीं बड़ी...परिषद् के साथ वास करता था। उस समय पंचकंग गृहपति दोपहर को श्रावस्ती से भगवान के दर्शन के लिये निकला। तब पंचकंग गृहपति को ख्याल हुआ—भगवान के दर्शन का यह समय नहीं है, भगवान् इस ममय ध्यान में हैं...। क्यों न...मल्लिका के आराम में चलूं।"

ये दोनों उद्धरण दीघनिकाय और मज्झिमनिकाय के हैं; जो कि त्रिपिटक के अत्यंत पुराने भाग हैं...[1]इनसे हमें ये बातें स्पष्ट मालूम होती हैं—

(१) यह एक बड़ा आराम था, जिसमें ७०० से तीन हजार तक परिव्राजक निवास कर सकते थे।

(२) नगर से जेतवन जाने वाले द्वार (=दक्षिण द्वार) के बाहर था।

(३) यहाँ बैठकर ब्राह्मण और साधु लोग नाना प्रकार की दार्शनिक चर्चाएँ किया करते थे।

(४) बुद्ध तथा उनके गृहस्थ और विरक्त शिष्य यहाँ जाया करते थे।

जेतवन के पीछे आजीवनों की भी कोई जगह थी। क्योंकि जातकअट्ठकथा में जाता है—

"उस समय[2] आजीवक जेतवन के पीछे नाना प्रकार का मिथ्या तप करते थे। उक्कुटिक प्रधान, वग्गुलिव्रत, कंटकाप्रश्रय, पंचाताप, तपन आदि।"

परिव्राजकाराम का बनना रुक जाने पर जेतवन के बहुत समीप और ऐसे आराम का होना संभव नहीं मालूम होता। शायद जेतवन के पीछे की ओर खुली जगह में वे तपस्या करते रहे होंगे।

---

१ "आयुष्मान सारिपुत्र...(जेतवन से) श्रावस्ती में पिंड के लिये चले।... बहुत सबेरा है...(इसलिये) जहां अन्य तीर्थिकों, परिव्राजकों का आराम था वहां गये।" —अं० नि० ७।८।११, ९।२।८, १०।३।७

२ जातकट्ठकथा १।१४।५

सुतनु-तीर—[१]संयुत्तनिकाय से पता लगता है, सुतनुतीर पर भी भिक्षुओं का कोई विहार था। 'तीर' शब्द से तो पता लगता है, सुतनु कोई जलाशय (=छोटी नदी, या झील) होगा। संभवतः वर्तमान ओड़ाझार, खड़ौआझार सुतनुतीर को सूचित करते हैं। ऐसा होने पर वर्तमान सजुहा ताल प्राचीन सुतनु है।

अंधवन—श्रावस्ती के पास एक और प्रसिद्ध स्थान अंधवन था। संयुत्त-निकाय-अट्ठकथा में—

"काश्यप[२] सम्यक्-संबुद्ध के चैत्य की मरम्मत के लिये धन एकत्रित कराकर आते हुए यशोधर नामक धर्म भाणक आर्यपुद्गल की आँखें निकालकर, वहाँ (स्वयं) अंधे हुए पाँच सौ चोरों के बसने से···**अंधवन** नाम पड़ा। यह श्रावस्ती से दक्षिण तरफ गव्यूतिभर दूप राजरक्षा से रक्षित (वन) था····। यहाँ एकांत-(प्रिय भिक्षु) जाया करते थे।"

फाहियान[३]ने इस पर लिखा है—

"विहार से चार 'ली' दूर उत्तर-पश्चिम तरफ एक कुंज है।···पहले ५०० अन्धे भिक्षु इस वन में करते थे। एक दिन उनके मंगल के लिए बुद्धदेव ने धर्मव्याख्या की उसी समय उन्होंने दृष्टिशक्ति पाली। प्रसन्न हो उन्होंने अपनी अपनी लकड़ियों को मिट्टी में दबाकर प्रणाम किया। उसी दम वे लकड़ियाँ वृक्ष के रूप में, और शीघ्र ही बन के रूप में परिणत हो गई। इस प्रकार इसका यह नाम (अंधवन) पड़ा। जेतवन वासी अनेक भिक्षु मध्याह्न भोजन करके (इस) वन में जाकर ध्यानावस्थ होते हैं।"

इससे मालूम होता है—

(१) काश्यप बुद्ध के स्तूप से श्रावस्ती की ओर लौटते समय यह स्थान रास्ते से पड़ता था।

(२) श्रावस्ती से दक्षिण एक गव्यूति या प्रायः २ मील पर था।

---

१ "एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध सावत्थी में सुतनु के तीर विहार करते हैं।"—सं० नि०, ५१।१।३ । २ स० नि०, ५।१।१०, अ० क०, ११४८
३ ch.XX

(३) जेतवन से उत्तर-पश्चिम ४ 'ली' (=१ मील से कम) था। दूरी और दिशाएँ इन पुरानी लिखंतों में शब्दशः नहीं ली जा सकतीं। इसलिए **पुरैना** का ध्वंस अंधवन मालूम होता है। यह **भींटी** से श्रावस्ती के आने के रास्ते में भी है। भींटी को सर जान मार्शल[१] पे काश्यप-स्तूप निश्चित किया हैं।

पांडुपुर--श्रावस्ती के पास पाँडुपुर नामक गाँव था। धम्मपदअट्ठकथा में श्रावस्ती के अविदूर पाँडुपुर नामक एक गांव था। वहाँ एक केवट वास करता था।"

इस गाँव के बारे में इसके अतिरिक्त और कुछ मालूम नहीं है।

मैंने इन थोड़े से पृष्ठों में श्रावस्ती और उसके पास के बुद्धकालीन स्थानो पर विचार किया है। सुत्त, विनय और उसकी अट्ठकथाओं की सामग्री शायद ही कोई छूटी हो। यहां मुझे सिर्फ भौगोलिक दृष्टि से ही विचार करना था, यद्यपि कहीं-कहीं और बातें भी आ गई हैं[२]।"[३]

---

१ A.S.R, 1910-11, p. 4 ३ जेतवन के नक्शों के लिये देखो Arch. Survey of India की १९७-०८ और १९१०-११ की रिपोर्ट

२ पालि त्रिपिटक और अट्ठकथाओं में बिखारी भौगोलिक सामग्री का सुंदर विवेचन प्रो० भरतसिंह उपाध्याय ने अपने ग्रंथ में किया है।

श्रावस्ती

बुद्ध के समय उत्तर भारत में पांच वड़ी शक्तियाँ थीं—कोसल, मगध, वत्स, वृजी और अवन्ती। इनमें वृजी (वैशाली) में लिच्छवियों का गणराज्य था। कोसल और कोसल के अधीन गणराज्य के सम्बन्ध में भी बहुत-सी बातों का पता लगता है। कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी, श्रावस्ती के सम्बन्ध में त्रिपिटक और उसकी टीकाओं (अट्ठकथाओं) में बहुत मिलता है। इसके अतिरिक्त फाहियान, यून्-च्वेङ के यात्रा विवरण, ब्राह्मण और बौद्ध सस्कृत ग्रन्थों तथा जैन प्राकृत-संस्कृत ग्रंथों में भी बहुत सामग्री है। किन्तु इन सब वर्णनों से पालि-त्रिपिटक में आया वर्णन ही अधिक प्रामाणिक है। ब्राह्मणों के रामायण महाभारतादि ग्रंथों का संस्करण बराबर होता रहा है, इसीलिए उनकी सामग्री का उपयोग बहुत सावधानी से करना पड़ता है। जैन ग्रन्थ ईसवी पाँचवीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुए, इसीलिये परम्परा बहुत पुरातन होने पर भी, वह पालि त्रिपिटक से दूसरे ही नम्बर पर है। पालि-त्रिपिटक ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में लिपिबद्ध हो चुके थे। जो बात ब्राह्मण ग्रन्थों के सम्बन्ध में है, वही महायान बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी है।

श्रावस्ती उस समय काशी (आजकल के बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ़, गाजीपुर के अधिकांश भाग), और कोसल (वर्तमान अवध) इन दो बड़े और समृद्धिशाली देशों की राजधानी होने से ऊँचा स्थान रखती थी। इसके अतिरिक्त बुद्ध के धर्म प्रचार का यह प्रधान केन्द्र था। इसीलिये बौद्ध साहित्यों में इसका स्थान और भी ऊँचा है। बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त कर पैंतालीस वर्ष तक धर्म-प्रचार किया। प्रतिवर्ष वर्षा के तीन मास वह किसी एक स्थान पर बिताते थे। उन्होंने अपने पैंतालीस वर्षावासों में से पच्चीस यहीं बिताये। सूत्रों और विनय के अधिक भाग का भी उन्होंने यहीं उपदेश किबा। ईसा पूर्व ४८३ वर्ष में बुद्ध का निर्वाण हुआ, यही अधिक विद्वानों को मान्य है। उन्होंने अपना प्रथम वर्षावास (ई०पू० ५२७) ऋषिपतन-मृगदाव (सारनाथ, बनारस) में

बिताया। अट्ठकथा[1] के अनुसार चौदहवाँ, तथा इक्कीसवें से चौंतालीसवें (ई० पू० ५०७-४८२ = वि० सं० पूर्व ४५०-४२५) बर्षावास उन्होंने यहीं बिताये।

श्रावस्ती के नाम-करण के विषय में मज्झिमनिकाय के सब्बासवसुत्त (१।१।२) में कहा गया है—"सावत्थी (श्रावस्ती)—सवत्थ ऋषि की निवास-वाली नगरी, जैसे काकन्दी माकन्दी। यह अक्षर-चिन्तकों (= वैयाकरणों) का मत है। अर्थकथाचार्य (भाष्यकार) कहते हैं—जो कुछ भी मनुष्यों के उपभोग परिभोग हैं, सब यहाँ हैं (सब्बं अत्थि) इसलिए इसे सावत्थी (श्रावस्ती) कहते हैं; बंजारों के जुटने पर 'क्या चीज है' पूछने पर "सब है, इस बात से सावत्थी[2]।"

श्रावस्ती कहाँ थी ? "कोसलानं पुरं रम्मं" वचन से ही मालूम हो जाता

---

१ 'तथागतो हि पठमबोधियं वीसति वस्सानि अनिबद्धवासो हुत्वा यत्थ यत्थ फासुकं होति तत्थ तत्थेव गन्त्वा'वसि। पथमक अन्तोवस्सं हि...धम्मचक्कं पवत्तेत्वा...बारणसिं उपनिस्साय इसिपतने वसि...। चतुद्दसमं जेतवने पंचवसमं कपिलवत्थुस्मि...। एवं वीसति वस्सानि अनिबद्धवासो हुत्वा, यत्थ यत्थ फासुकं होति तत्थ तत्थेव वसि। ततो पट्ठाय पन द्वे सेनासनानि धुवपरिभोगानि अहोसि। कतरानि द्वे ?—जेतवनञ्च पुब्बारामञ्च।...। उतुवस्सं चारिकं चरित्त्वापि हि अन्तो वस्से द्विसु येव सेनासनेसु वसति। एवं वसन्तो पन जेतवने रत्तिं वसित्त्वा पुन दिवसे......दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा सावत्थिं पिण्डाय पविसित्त्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्त्वा पुब्बारामे दिवाविहारं करोति। पुब्बारामे रत्ति वसित्त्वा पुनदिवसे पाचीन-द्वारेन...जेतवने दिवाविहारं करोति।"

—(अङ्गुत्तर० अट्ठकथा, हेवावितारणे २१४ पृष्ठ)

२ सावत्थीति सवत्थस्स इसिनो निवासट्ठानभूता नगरी, यथा काकन्दी माकन्दी'ति। एवं ताव अक्खरचिंतका। अट्ठकथाचरिया पर भणन्ति—यं किंच मनुस्सानं उपभोगं परिभोगं सब्बमेत्थ अत्थीति सावत्थी। सत्थ-समायोगे च किं भण्डं अत्थीति पुच्छिते सब्बमत्थीति वचनमुपादाय सावत्थी—

सब्बदा सब्बूपकरणं सावत्थियं समोहितं।
तस्मा सब्बमुपादाय सावत्थी'ति पवुच्चति॥

है, कि वह कोसल देश में थी। पालि ग्रन्थों में कितनी ही जगहों पर श्रावस्ती की दूसरे नगरों में दूरी भी उल्लिखित मिलती है—

१—"राजगृह कपिलवस्तु से साठ योजन दूर और श्रावस्ती पन्द्रह योजन। शास्ता (=बुद्ध) राजगृह से पैंतालीस योजन आकर श्रावस्ती में विहरते थे।"[१]

२—"पुक्कसाती (=पुष्करसाती) नामक कुलपुत्र (तक्षशिला से) आठ कम दो सौ योजन पर जेतवन के सदर दरवाजे के पास से जाते हुए।"[२]

३—"मज्छिकासंड में सुधर्म स्थविर क्रुद्ध हो शास्ता के पास (जेतवन) जाकर......। शास्ता ने (कहा) यह बड़ा मानी है; तीस योजन मार्ग जाकर पीछे आवे।"[३]

४—"दारुचीरिय......सुप्पारक बन्दर के किनारे पहुँचा।......तब उसको देवता ने बताया—हे वाहिक, उत्तर के जनपदों में श्रावस्ती नामक नगर है, वहाँ

कोसलानं पुरं रम्मं दस्सनेय्यं मनोरमं।
वस हि सद्देहि अविवित्तं अन्नपानसमायुतं॥
बुड्ढि वेपुल्लतं पत्तं इद्धं फीतं मनोरमं।
आलकमन्दाव देवानं सावत्थी पुरमुत्तमं॥
—(मज्झिमनिकाय अ० क० १।१।२)

१ "राजगहं कपिलवत्थुतो दूरं सट्ठियोजनानि, सावत्थी पन पञ्चदस। सत्था राजगहतो पञ्चचत्तालीसयोजनं आगन्त्वा सावत्थियं विहरति।"
—(म० नि० अ० क० १।३।४)

२ "पुक्कसाति नाम कुलपुत्तो (तक्कसलातो) अट्ठ हि ऊनकानि द्वे योजनसतानि गतो जेतवनद्वारकोट्ठकस्स पन समीपे गच्चन्तो...."
—(मज्झिम नि० अट्ठ० ३।४।१०)

३ "मच्छिकासंडे सुधम्मत्थेरो....कुज्झित्वा सत्थुसंतिकं (जेतवने) गन्त्वा। सत्था...मानत्थद्धो एस तिंसयोजनं ताव मग्गं गंत्वा पच्छा-गच्छतु।"
—(धम्मपद-अट्ठ० हेवावितारणे पृ० २।५०)

वह भगवान् विहारते हैं।......(वह) एक सौ बीस योजन का रास्ता एक-एक रात वास करते हुए ही गया।"[१]

५—"शास्ता जेतवन से निकलकर क्रमशः अग्गालव विहार पहुँचे। शास्ता ने (सोचा)—जिस कुल-कन्या से हितार्थ तीस योजन मार्ग हम आये।"[२]

६—"श्रावस्ती से संकाश्य नगर तीस योजन।"[३]

७—"उग्र नगर निवासी उग्र नामक श्रेष्ठि-पुत्र अनाथपिंडक का मित्र था।... छोटी सुभद्रा यहाँ (श्रावस्ती) से एक सौ बीस योजन पर बसती है।"[४]

८—"उस क्षण जेतवन से एक सौ बीस योजन पर कुररघर में।"[५]

९—"तीस योजन..................(जाकर अंगुलिमाल का।"[६]

१०—"महाकप्पिन एक सौ बीस योजन आगे जा चंद्रभागा नदी के तीर बरगद की जड़ में बैठे।"[७]

---

१ "दारुचीरियो...सुप्पारकपत्तनतीरं ओक्कामि !......अयस्स देवता आचिक्खि—अत्थि बाहिय, उत्तरेसु जनपदेसु सावत्थिनाम नगरं तत्थ सो भगवा विहरति। (सो) वीसं योजनसतिकं मग्गं एकरत्तिवासेनेव अगमासि।"

—(धम्मपद-अट्ठ० ८।२ उदान अट्ठ० १।१०)

२ "सत्था जेतवना निक्खमित्त्वा अनुपुब्बेन अग्गालवविहारं अगमासि।... सत्था—यमहं झलधीतरं निस्साय तिसयोजनमग्गो आगतो।"

—(धम्मपद-अट्ठ० १३।७,१५।५)

३ "सावत्थितो संकस्सनगरं तिसयोजनानि"।—(धम्मपद-अट्ठ० १४।२)

४ "अनाथपिंडिकस्स...उग्गनगरवासी उग्गो नाम सेट्ठि पुत्तो सहायको।... चूल सुभद्दा दूरे वसति इतो वीसतियोजनसतमत्थके..."

—(धम्म० अट्ठ० २१।८)

५ "तस्मि खणे जेतवनतो वीसं योजनसतमत्थके कुररघरे..."

—(धम्म० अट्ठ० २५।७)

६ "तिसयोजनं...अंगुलिमालस्स"।—(मज्झिम० अट्ठ० १३।४)

७ "महाकप्पिनराजा......।......वीसं योजनसतं पच्चुग्गन्त्वा चन्द्रभागाय नदियातीरे निग्रोधमूले निसीदि।"

—(धम्मपद-अट्ठ० ६।४)

११—"साकेत छे योजन।"[१]

ऊपर के उद्धरणों में राजगृह, कपिलवस्तु, तक्षशिला, मच्छिकासंड, सुप्पारक, अग्गालव विहार, संकाश्य, उग्रनगर कुरघर, अंगुलिमाल से भेंट होने का स्थान, चन्द्रभागा नदी का तीर, तथा साकेत—इन तेरह स्थानों से श्रावस्ती की दूरी मालूम होती है। इन स्थानों में कपिलवस्तु (तिलौरा कोट, नेपाल तराई), राजगृह (राजगिरि, जिला पटना, बिहार), (साकेत अयोध्या, जि० फैजाबाद, उ० प्र०), तक्षशिला (शाहजी की ढेंरी, जिला रावलपिंडी, पाकिस्तान), सुप्पारक (सुप्पारा, जिला सूरत, बम्बई) सकाश्य (संकिसा, जिला फर्रुखाबाद उ० प्र०) तथा चंद्रभागा नदी (चनाब, पंजाब) यह सात स्थान निश्चित हैं।

पाली के शब्दकोश, 'अभिधानप्पदीपिका' के अनुसार योजन का मान इस प्रकार है—

"अंगुद्विच्छ विदत्थि, ता दुवे सिपुं।—
रतनं तानि सत्तेव, यट्ठि, ता वीसतूसभं।
गावूतमुसभासीति, योजनं चतुगावुतं।"

१२ अंगुल = विदत्थि = (४ गिरह)
२ विदत्थि (बालिश्त) = रतन (हाथ)
७ रतन = १ यट्ठि (लट्ठा) = (३$\frac{१}{२}$ गज)
२० यट्ठि = १ उसभ (ऋसभ) = (७० गज)
८० उसभ = १ गावूत (गव्यूति) = (५६०० गज = (३.१८ मील)
४ गावूत = १ योजन = (१२$\frac{८}{११}$ मील)

अभिधर्मकोश में[२] २४ अंगुल = १ हस्त, ४ हस्त = १ धनु (= २ गज), ५०० धनु = १ कोश (= १००० गज), ८ कोश योजन (= ४.४५ मील) है।

---

१ महावग्ग, पृष्ठ २८७

२ चतुर्विंशतिरंगुल्यो हस्तो, हस्तचतुष्टयम्।
धनुः, पञ्चशतान्येषां क्रोशो,..... तेऽष्टौ योजनमित्याहुः,
—(अभिधर्मकोश ३।८८-८)

श्रावस्ती के इस फासिले को आधुनिक नक्शे से मिलाने पर—

	पुरातन		आधुनिक-
	योजन	मील	मील
कपिलवस्तु	१५	१९०.९	६२.४
साकेत	७	७६.३६	५१.२
राजगृह	४५	५७२.७२	२७६.८
तक्षशिला	१९२	२४४३.६२	७२४.८
सुप्पारक	१२०	१७२७.२६	७९६,८
संकाश्य	३०	३८१.८१	१६९.६
चन्द्रभागा नदी	१२०	१७२७.२६	५९०.४

श्रावस्ती और साकेत का मार्ग चालू और फासिला थोड़ा था; इसलिये इसकी दूरी में सन्देह की कम गुंजाइश है। ऊपर के हिसाब से योजन आठ मील के करीब होगा।

श्रावस्ती कहाँ ?—

कोसल देश की राजधानी श्रावस्ती को विद्वानों ने उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले का सहेट-महेट निश्चित किया है। उस समय कोसल नाम का दूसरा कोई देश न था, इसीलिये उत्तर दक्षिण लगाने की आवश्यकता न थी। छठी शताब्दी के (=विक्रम सं० ५५८–६५७) बाद जब मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ का नाम भी कोसल पड़ा, तो दोनों को अलग करने के लिये, इसे उत्तर कोसल और मध्य प्रदेश वाले को दक्षिण कोसल या महाकोसल कहा जाने लगा। श्रावस्ती अचिरवती (=रापती) नदी के तीर थी[1]। अचिरवती नगर के समीप ही बहती थी, क्योंकि हम देखते हैं कि नगर की वेश्याएँ और भिक्षुणियाँ यहाँ

१ "इध भन्ते भिक्खुनियो अचिरवतिया नदिया वेसियाहि सद्धिं नग्गा एकतित्थे नहायन्ति।...अनुजानामि ते विसाखे अट्ठवरानीयि।..."

—(महावग्ग चीवरक्खन्धे, ३२७)

साधारणत: स्नान करने जाया करतीं थीं। मज्झिम-निकाय अट्ठकथा में[1] कहा गया है, कि यह नदी बहुत पुरातन (काश्यप बुद्ध) काल में नगर को घेरकर बहती थी। उसने पुब्बकोट्ठक के पास बड़ा दह खोद दिया था। यह दह नहाने का बड़ा ही अच्छा स्थान था। यह स्थान सम्भवतः महेट के पूर्वोत्तर कोने पर था। इस दह के समीप तथा अचिरवती के[2] किनारे ही राजमहल था। लेकिन साथ ही सुत्तनिपात की अट्ठकथा से[3] पता लगता है कि अचिरवती के किनारे वाले जौ के खेत जेतवन और श्रावस्ती के बीच में पड़ते थे। इसका मतलब यह है कि अचिरवती उस समय या तो जेतवन और श्रावस्ती के पश्चिम ओर होती हुई बहती थी अथवा पूर्व की ओर। लेकिन पूर्व मानने पर, उसका राजमहल के (जो कि नौशहरा दर्वाजा के पूर्व तरफ था) के पास से जाना संभव नहीं हो सकता। इसलिये उसका श्रावस्ती और जेतवन के पश्चिम होकर, राजगढ़ दर्वाजे से होते हुए, वर्तमान नौखान में होकर बहना अधिक सम्भव मालूम होता है। यह बात यद्यपि पालि उद्धरण के अनुसार ठीक जँचेगी; किन्तु भूमि को देखने से इसमें सन्देह मालूम होता है। क्योंकि जेतवन और श्रावस्ती के पश्चिमी भाग में कोई ऐसा चिह्न नहीं है, जिससे कहा जाय कि यहाँ कभी नदी बहती थी। साथ ही पुरैना और अमहा तालों के अति पुरातन स्तूपवशेश भी इसके लिये

---

१ कस्सपदसवलस्स काले अचिरवती नगर परिक्खिपित्वा सन्दमाना पुब्बकोट्ठकं पत्त्वा उदकेन भिन्दित्त्वा महन्तं उदकदहं मापेसि, समतित्थं अनुपुब्बगम्भीरं। —(म० नि० १।३।६; अ० क० ६७१)

२ "....राजा पसेनदी कोसलो मल्लिकाय देविया सद्धिं उपरि पासादवरगतो होति। अद्दसा खो राजा पसेनदि ...तेरसवग्गिये भिक्खू अचिरवतिया नदिया उदके कीलन्ते।...."—(पाचित्ति; ; अचेलकवग्ग पृ० १२७)

३ "भगवति किर सावत्थियं विहरन्ते अञ्ञतरो ब्राह्मणो सावत्थिया जेतवनस्स च अन्तरे अचिरवतीनदीतीरे यवं वपिस्सामीति खेत्तं कसति।..... तस्स अज्ज वा स्वे वा लायिस्सामीति उस्सुक्कं कुरुमानस्सेव महामेघो उट्ठहित्वा सब्बरत्तिं वस्सि। अचिरवती नदी पूरा आगन्त्वा सब्बं यवं वहि।"
—(सुत्त० नि० ४।१, अ० क० ४१९)

बाधक हैं। रामगढ़ दर्वाजे के पास की भूमि में भी ऐसी शक्ति नहीं है, जो अचिरवती ऐसी पहाड़ी नदी की तेज धार के जल्दी के घुमाव को सह सके। मालूम होता है, मूल परम्परा में ब्राह्मण के जौ के खेत का अचिरवती की बाढ़ से नष्ट होना वर्णित था जिसके लिए खेतों का अचिरवती के किनारे होना कोई आवश्यक नहीं। हो सकता है सिंगिया नाला की तरह का कोई नाला जेतवन और श्रावस्ती के पश्चिम भाग में रहा होगा, या उसके बिना भी जौ के खेत का अचिरवती की बाढ़ से नष्ट होना बिल्कुल संभव है। अचिरवती की बाढ़ से नष्ट होने से ही, खेतों को पीछे अचिरवती के किनारे, समझ लिया गया। यह परिवर्तन मूल सिंहाली अट्ठकथा ही में सम्भवतः हुआ, जिसके आधार पर बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाएँ लिखीं। अचिरवती का श्रावस्ती के उत्तर और पूर्व-पश्चिम बहने का एक और भी प्रमाण हमें मज्झिमनिकाय से मिलता है। आनन्द श्रावस्ती में भिक्षा करके पूर्वाराम को जा रहे थे; उसी समय राजा प्रसेनजित् भी अपने हाथी पर सवार हो नगर से बाहर निकला। राजा ने पूर्व द्वार (काँदभारी दर्वाजा) से बाहर पूर्वद्वार और पूर्वाराम के बीच में कहीं पर आनन्द को देखा। राजा ने उस जगह से अचिरवती के किनारे पर आनन्द को चलने की प्रार्थना की। सम्भवतः उस समय अचिरवती सहेट के उत्तरी किनारे से लगी हुई बहती थी। कच्ची कुटी के पास का स्तूप सम्भवतः अनाथपिण्डक

---

१ आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं··· सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा··· येन पुब्बारामो···तेन उपसंकमि···। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो एकपुण्डरीकं नागं अभिरुहित्वा सावत्थिया निय्यासि दिवादिवस्स। अद्दसा खो राजा···दूरतो'व आगच्छन्तं।···येनायस्मा आनन्दो तेनु'पसंकमि।··· एतदवोच—स चे भन्ते,··· न किञ्चि अच्चायिकं करणीयं; साधु,···येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनुपसकमतु अनुकम्पं उपादाया'ति।···अथ खो··· आनन्दो येन अचिरवतिया नदिया तीरं तेनु' पसंकमि, उपसंकमित्वा अञ्ञतरस्मि रुक्खमूले पञ्ञत्ते आसने निसीदि।···अयं भन्ते, अचिरवती नदी दिट्ठा आयस्मता चेव···अम्हेहि च, यदा उपरि पब्बते महामेघो अभिप्पवुट्ठो होति, अथायं अचिरवती नदी उभतो कूलानि संविस्सन्दन्ती गच्छति।"
—(म० नि० २।४।८)

के घर को बतलाता है। अनाथपिण्डक का घर अचिरवती के पास था; शायद इसलिए हम जातकट्ठकथा में[1] देखते हैं, कि अनाथपिण्डक का बहुत सा भूमि में गड़ा हुआ धन, अचिरवती के किनारे के टूट जाने से बह गया।

श्रावस्ती (१) अचिरवती के किनारे थी, (२) कोसल देश में साकेत (अयोध्या) से ६ योजन पर थी; तथा खुद्दकनिकाय के पेतवत्थु के[2] अनुसार (३) हिमालय वहाँ से दिखलाई पड़ता था। यहाँ 'हिमवान् को देखते हुए' शब्द आया है; जिससे साफ है, कि श्रावस्ती हिमालय की जड़ में न होकर वहाँ से कुछ फासिले पर थी, जहाँ से कि हिमालय की चोटियाँ दिखलायी पड़ती थीं। महेट से हिमालय चौबीस ही मील दूर है, और खूब दिखलाई पड़ता है।

श्रावस्ती नगर

श्रावस्ती की जनसंख्या[3] अट्ठकथाओं में सात कोटि लिखी है, जिसका अर्थ हम यही लगा सकते हैं कि वह एक बड़ा नगर था। यह बात तो कोसल जैसे बड़े शक्तिशाली राज्य की पुरानी राजधानी होने से भी मालूम हो सकती है। महापरिनिर्वाण सूत्र में[4] जहाँ पर आनन्द ने बुद्ध से कुशीनगर छोड़कर किसी बड़े नगर में शरीर छोड़ने की प्रार्थना की है वहाँ बड़े नगरों की सूची दी है।

---

१ "अचिरवतीनदीतीरे निहितधनं नदी कूले भिन्ने समुद्दं पविट्ठं अत्थि।"
—(जातक १।४।१०)

२ "सावत्थि नाम नगरं हिमवन्तस्स पस्सतो।" (पेतवत्थु० ४।६)।

३ "तदा सावत्थियं सत्तमनुस्सकोटियो वसन्ति। तेसु सत्थुधम्मकथं सुत्वा पञ्चकोटिमत्ता मनुस्सा अरियसावा का जाता, द्वे कोटिमत्ता पुथुज्जना"
—(ध० प० १।१, अ० क० ३)

४ "मा भन्ते भगवा इमस्मिं कुड्डनगरे उज्जंगलनगरे साखनगरे परिनिब्बायतु। सन्ति भन्ते अञ्ञानि महानगरानि, सेय्यथीदं चम्पा, राजगहं, सावत्थी, सकेतं, कोसम्बी, बाराणसी..."—(दी० नि० २।३।११)

इस सूची में श्रावस्ती का उल्लेख है। इससे भी यह स्पष्ट है। निवासियों में पाँच करोड़ लोग बौद्ध थे, इसका मतलब भी यही है कि श्रावस्ती के अधिवासियों की अधिक संख्या बौद्ध थी। और यह इससे भी मालूम हो सकता है कि बुद्ध के उपदेश का यह एक केन्द्र रहा।

उस समय मकानों के बनाने में लकड़ी का ही अधिकतर उपयोग होता था। इमारतें प्रायः सभी लकड़ी की थीं। यद्यपि श्रावस्ती के बारे में खास तौर से नहीं आया है, तो भी राजगृह के वर्णन से हम समझ सकते हैं कि शहरों के चारों तरफ के प्राकार भी लकड़ी के ही बनते थे। पाराजिक[1] (विनय-पिटक) में यह बात स्पष्ट है। मेगस्थनीज ने भी पाटलिपुत्र के चारों ओर लकड़ी का ही प्राकार देखा था। (उस समय जब चारों ओर जंगल था, लकड़ी इफ़रात थी) लकड़ी का प्राकार उस धनुष-बाण के जमाने के लिए उपयुक्त था, इसलिए हम पुराने पाटलिपुत्र को भी लकड़ी के प्राकार से ही घिरा पाते हैं। बुलन्दी बाग की खुदाई में इसके कुछ भाग मिले हैं।

श्रावस्ती में मुख्यतः चार[2] दर्वाजे थे, जिनमें तीन तो उत्तर[3], पूर्व और दक्षिण दर्वाजों के नाम से प्रसिद्ध थे। इनमें से जेतवन से नगर में आने का दर्वाजा दक्षिण द्वार था। पूर्वाराम पूरब दर्वाजे के[4] सामने था। इन्हीं तीन द्वारों का

---

१ "अत्थि भन्ते, देवगहदारूनि नगरपटिसंखारिकानि आपदत्थाय निक्खित्तानि। स चे आनि राजा दापेत्ति, हरापेथ।" — द्वितीय पराजिका)

२ "जेतवने रत्तिं वसित्वा पुनदिवसे...दक्खिणद्वारेन सावत्थिं पिण्डाय पविसित्वा पाचीन-द्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे दिवाविहारं करोत्ति।

—(मज्झि० ९।३।६, अ० क० ३६९)

३ "पाचीन द्वारे सङघस्स वसनट्ठानं कातुं ते युत्त विसाखें'ति।"

—(धम्मपद प० ४।८ अ० क० १९९)

४ "पकतियापि सत्था विसाखाय गेहे भिक्खं गण्हित्वा दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा जेतवने वसति। अनाथपिण्डकस्स गेहे भिक्ख गहेत्वा पाचीनद्वारे निक्खमित्वा पुब्बारामे वसति। उत्तरद्वारं सन्धाय गच्छन्तञ्जेव भगवन्तं दिस्वा चारिकं पक्कमिस्सती'ति धानन्ति।" —(ध० प० ४।८, अ० क० २००)

वर्णन अधिकतर मिलता है। पश्चिम द्वार का होना भी यद्यपि स्वाभाविक है तथापि इसका वर्णन त्रिपिटिक या अट्ठकथा में नहीं देखने आता में। अट्ठकथा से पता लगता है कि उत्तर के द्वार के बाहर एक गाँव बसता था, जिसका नाम 'उत्तर द्वारगाम' था। यह 'उत्तर[१] द्वारगाम' नगर के प्राकार तथा नदी के मध्य की भूमि में झोपड़ियों का एक छोटा गाँव होगा।

विमानवत्थु[२] तथा उदान[३] अट्ठकथा में 'केवटद्वार' नामक एक और द्वार का वर्णन किया गया है, जिसके बाहर केवटों (मल्लाहों) का गाँव बसा था। उस समय व्यापार के लिए नदियों का महत्व अधिक था। अत: केवट गाँव का एक बड़ा गाँव होना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार हमको पिटक और उसकी अट्ठकथाओं से उत्तर, पूर्व, दक्षिण द्वार तथा केवट-द्वार इन चार दर्वाजों का पता लगता है। 'सहेट' के ध्वंसावशेष तथा उसके दर्वाजों का वर्णन डाक्टर फोगल ने १९०७-८ के पुरातत्त्व-विभाग के विवरण में विस्तारपूर्वक कियां है।वहाँ, उन्होंने महेट (श्रावस्ती) का घेरा १७,२५० फीट या ३¼ मील मे कुछ अधिक लिखा है। यद्यपि श्रावस्ती नगर ईसा की बारहवीं शताब्दी में मुसलमन्नों द्वारा वीरान किया गया और इसीलिए ईसा पूर्व छठी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच अठारह शताब्दियों में हेर-फेर होना बहुत स्वाभाविक है; तथापिं इतना हम कह सकते हैं कि कोसल राज्य के पतन (प्राय: ईसा पूर्व ४ या ५ शताब्दी) के बाद फिर

---

१ "एकदिवसं हि भिक्खू सावत्थियं उत्तरद्वारगामे पिण्डाय चरित्वा··· नगरमज्झेन विहारं आगच्छन्ति। तस्मिन् खणे मेघो उट्ठाय पावस्सि। ते सम्मुखागतं विनिच्छयसालं पविसित्व, विनिच्छयमहासे लञ्जं गहेत्वा सामि के असामिके करोन्ते दिस्वा, अहो इमे अधम्मिका··"

—(ध० प० १९।१, अ० क० ५२९)

२ "केवट्ट द्वारा निक्खम्म अहु मय्हं निवेसनं।"

—(वि० व० २:२)

३ "सावत्थिनगरद्वारे केवट्ट गामे···पञ्चकुलसतजेट्ठकस्स पुत्तो,······ यसोजो···।"

—(उदान० ३,३। अ० क० ११९)

उसे किसी बड़े राज्य की राजधानी बनाने का मौका न मिला। पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में फाहियान ने भी इसे दो सौ घरों का गाँव देखा था। युन्-च्वेङ ने भी इसे उजाड़ देखा। इसलिये इतना कहा जा सकता है कि श्रावस्ती की सीमा-वृद्धि का कभी मौका नहीं आया; और वर्तमान 'महेट' का १७,२५० फीट का घेरा श्रावस्ती की पुरानी सीमा को बढ़ाकर नहीं सूचित करता है।

श्रावस्ती भारत के बहुत ही पुराने नगरों में से है; इसलिये उसके भीतर नियमपूर्वक खुदाई होने से अवश्य हमें बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री हाथ लगेगी। हम पटना में मौर्यों का तल, वर्तमान धरातल से १७ फुट नीचे पाते हैं। श्रावस्ती में भी बुद्धकालीन सामग्री के लिए हमें उतना नीचे जाना पड़ेगा। डाक्टर फोगल ने प्राकारों के अनेक स्थानों पर ईटें पाई हैं, जो तल और लम्बाई-चौड़ाई के विचार से ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से ईस्वी दशवीं शताब्दी तक की मालूम होती हैं। महेट के प्राकार में जहाँ कहीं भी जमीन कुछ नीची जान पड़ती है, लोग उसे दरवाजा कहते हैं और ये आसपास के किसी वृक्ष या गाँव के नाम से मशहूर हैं। ऐसे दर्वाजे अट्ठाइस के करीब हैं। डाक्टर फोगल ने इनकी परीक्षा करके इनमें से ग्यारह को ही दर्वाजा माना है, जिनमें उत्तर तरफ एक, पूर्व तरफ एक, दक्षिण तरफ चार और पश्चिम तरफ पाँच हैं। इनमें से कौम त्रिपिटक और अट्ठकथा में वर्णित चारों दर्वाजे हो सकते हैं, इस पर जरा विचार करना है।

उत्तर द्वार

ऊपर के उद्धरण से मालूम होता है, जब बुद्ध उत्तर दर्वाजे की तरफ जाते थे तो लोग समझ लेते थे कि अब वे विचरण के लिए जा रहे हैं। इतना ही नहीं, वहाँ[१] ही हम भद्दिय के लिए प्रस्थान करते हुए उन्हें उत्तर द्वार की ओर जाते देखते हैं। पर 'भद्दिया' अंगदेश में ('गंगा के तटपर मुँगेर के आसपास) एक प्रसिद्ध व्यापारी नगर था। श्रावस्ती से पूर्व की ओर जाने वाला मार्ग उत्तर

१ "अथेकदिवसं सत्था......भद्दियनगरे......भद्दियस्स नाम सेट्ठिपुत्तस्स उपनिस्सयसम्पत्तिं दिस्वा......उत्तरद्वाराभिमुखो अहोसि।"

—(ध० प० ४।८, अ० क० २८०)

द्वार से था। इसके बाहर अचिरवती[१] से काठ की बोटों का पुल रहता था। इससे पार होकर पूर्व का रास्ता था। उत्तर तरफ के दर्वाजों में सिर्फ नौसहरा[२] ही एक दर्वाजा है, जिसे डाक्टर फोगल के अन्वेषण ने पुराना दर्वाजा सिद्ध किया है। बाजार-दर्वाजे से, जिसे हम दक्षिण दर्वाजा सिद्ध करेंगे, कच्ची कुटी तक चौड़ी सड़क का निशान अब भी स्पष्ट मालूम होता है। यही नगर की सर्वप्रधान सड़क थी। दक्षिण दर्वाजे का बाजार-दर्वाजा नाम भी सम्भवतः कुछ अर्थ रखता है। कच्ची कुटी के पास से एक रास्ता नौसहरा-दर्वाजे को भी जाता है। नौसहरा-दर्वाजा ही श्रावस्ती का उत्तर द्वार है, जिसके बाहर एक गाँव बसा हुआ था। सड़क के किनारे वाले भाग पर कहीं राज कचहरी थी, जिसमें वर्षा से बचने के लिए भिक्षु चले गये थे और वहाँ उन्होंने जजों को घूस लेकर मालिकों को बेमालिक बनाते देखा।

पूर्व दर्वाजा

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण दर्वाजा था। इसके ही बाहर पूर्वाराम था। पूर्वाराम बहुत ही प्रसिद्ध स्थान था, इसलिए उस जगह स्तूप आदि के ध्वंस अवश्य मिलने चाहिये। गंगापुर दर्वाजे को ही डाक्टर फोगल ने पूर्व तरफ में वास्तविक दर्वाजा माना है। इसके अतिरिक्त काँदभारी-दर्वाजा भी पूर्वदक्षिण कोने पर है, जिसे भी पूर्व ओर लिया जा सकता है; लेकिन (१) हमने ऊपर देख लिया है कि आनन्द को राजा प्रसेनजित् ने पूर्व दर्वाजे के बाहर देखा था, जहाँ से अचिरवती बिलकुल पास थी। काँदभारी के स्वीकार करने से वह दूर पड़ जायगी। (२) भगवान बुद्ध सदा ही दक्षिण दर्वाजे से नगर में प्रवेश कर फिर पूर्व दर्वाजे से निकलकर पूर्वाराम जाते देखे जाते हैं। यदि काँदभारी-दर्वाजा पूर्व दरवाजा होता, तो जेतवन से बाहर ही बाहर पूर्वाराम जाया जा सकता था, जिसका कहीं जिक्र नहीं है। (३) पुब्बकोट्ठक[१] जो कि अचिर-

---

१ "तेन खो पन समयेन मनुस्सा उलुम्पं बन्धित्वा अचिरवतिया नदिया ओसादेन्ति। बन्धने छिन्ने कट्ठानि विप्पकिण्णानि अगमंसु।"
—(पाराजिक २। पृ० ६८)

२ "Along the river face,.......only one........Nausahra Darwaza..has proved to be one of the original city-gates."

वती के पास था, वह पूर्वाराम के भी पास था, क्योंकि भगवान् सायंकाल को स्नान के लिए वहाँ जाते हैं। पास में रम्यक ब्राह्मण के आश्रम में व्याख्यान भी देते हैं और फिर पूर्वाराम लौट भी आते हैं।

लेकिन इनके विरुद्ध सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि गंगापुर-दर्वाजे के बाहर आसपास कोई ऐसा ध्वंसावशेष डाक्टर फोगल के नकशे में नहीं दिखाई पड़ता। साथ ही काँदभारी-दर्वाजे के बाहर ही हम हनुमनवाँ के ध्वंसावशेष को देखते हैं। स्थान को देखने पर काँदभारी-दर्वाजा तथा हनुमनवां पूर्वाराम मालूम होता है।

दक्षिण द्वार

दक्षिणद्वार नगर का एक प्रधान द्वार था। जेतवन जाने का यही रास्ता था। दर्वाजे और जेतवन के बीच में अक्सर राजकीय सेनाएँ[२] पड़ाव डालती थीं। कारवां[3] भी इसी बीच की भूमि में ठहरते थे। यही दर्वाजा साकेत

---

१ पिंडपातपटिक्कन्तो......येन पुब्बारामो तेनुपसंकमि।......सायन्ह-समयं पटिसल्लाधा वुट्ठितो......येन पुब्बकोट्ठको......गत्तानि परिसिञ्चतुं......। अथ......आनन्दो अयं भन्ते, रम्मकस्स ब्राह्मणस्स अस्समो अविदूरे.........साधु भन्ते......उपसकुमतु अधुकम्पं उपादायाति।......भगवा......अस्समं पविसित्वा ......भिक्खू आमन्तोस।"

—(म० नि० १।३।६)

२ "एकस्मि समये वस्सकाले कोसलरञ्ञे पच्चन्तो कुप्पि।......। राजा अकाले वस्सन्ते येव निक्खमित्वा जेतवनसमीपे खन्धावारं बन्धित्वा चिन्तेसि"।

—(जा० १७६, पृ० ४२९)

२ "सेतव्यवासिनो हि....भातरो कुटुम्बिका....अथेकस्मि समये ते उभोपि भातरो पञ्चहि सकटतेहि नाना भण्डं गहेत्वा सावत्थि गन्त्वा सावत्थिया च जेतवनस्य च अन्तरे सकटानि मोचयिंसु।"

—(ध० प० १.६ अ० क० ३३)

(अयोध्या) जाने का भी था। दक्षिण द्वार और जेतवन[1] के मध्य में एक जलाशय का वर्णन मिलता है। तमाशे[2] के लिए भी यही जगह निश्चित थी। श्वेताम्बी कपिलवस्तु के रास्ते में थी, इसलिए वहाँ से श्रावस्ती आने में उत्तर द्वार के सामने सदा उतरना पड़ता था, फिर गाड़ियों का नगर के दक्षिण में ठहरना बतलाता है कि श्रावस्ती और जेतवन के बीच की भूमि में खुली जगह थी, जो पड़ाव के लिए सुरक्षित थी। वैंतारा ताल तथा और भी कुछ नीची भूमि, सम्भवतः पुराने जलाशयों को सूचित करती है।[3]

सवाल यह है कि कौन-सा प्रसिद्ध दक्षिणद्वार है, जिससे जेतवन में आना-जाना होता था। डाक्टर फोगल के अनुसार गेल ही, दर्वाजा ही वह हो सकता है क्योंकि यह दरवाजा सबसे नजदीक है। किन्तु उसके दरवाजा न होने में एक बड़ी भारी रुकावट यह है कि जेतवन का दर्वाजा उत्तर मुँह का बनाना पड़ता। यद्यपि चीनी यात्री के अनुसार एक दर्वाजा उत्तर को था, किन्तु पालि ग्रन्थों में उसका पता नहीं है। इस प्रकार दक्षिणद्वार वैंतारा और बाजार-दर्वाजा दोनों ही में से कोई हो सकता है। पालि ग्रन्थों में जेतवन श्रावस्ती दक्षिण द्वार) से न बहुत दूर था न बहुत समीप, यही मिलता है। गेलही-दर्वाजे से जेतवन १३८६ फीट या चौथाई मील से कुछ अधिक है। अट्ठकथा से मालूम होता है कि लोग जेतवन जाते वक्त नगर की बड़ी सड़क से जाते थे। दूसरी जगह हम देखते हैं कि श्रावस्ती जाने वाली सड़क जेतवन से पूर्व

---

१ "तेन खो पन समयेन सम्बहुला कुमारका अन्तरा च सावत्थि अन्तरा च जेतवनं मच्छके बाधेन्ति। ..भगवा पुब्बण्हसमयं...सावत्थियं पिंडाय...पिंडाय पाविसि।......उपसंकमित्वा—भायथ तुम्हेकुमारका दुक्खस्स" (भगगसमीपे वलाके निदाघकाले उदके परिक्खीणे....।) —(उदान० ५।४, पृ९ १९६)

२ ....(धन्दामत्थेरो, सहायको च)....एवं अनुविचरन्ता सावत्थियं अनुपप्पत्ता नगरस्स च बिहारस्स च अन्तरा वासं गण्हिसु।"

—(ध० प० २६।३०। प्र० क० ६७०)

३ "सो एक दिवसम्हि पासादवरगतो सिहपञ्जर उग्घाटेत्वा महावीथिय ओलोकेन्तो गन्धममादिहत्थं महाजनं धम्मसवनत्थाय जेतवनं गच्छन्तं दिस्वा..."—(सुवण्णसामजातक ५३९)

होकर जाती थी। इन सारी बातों पर विचार करने से गेलही-दर्वाजा दक्षिण द्वार नहीं, बाजार दर्वाजा ही हो सकता है क्योंकि इससे जेतवन पूर्व मुख होने की भी वजह मालूम हों सकती है। बाजार दर्वाजा दक्षिण-द्वार होने के लायक है, इसके बारे में डाक्टर फोगल लिखते है[1]–"यह १२ फुट चौड़ा मार्ग एक ऐसे बड़े मार्ग पर जाकर समाप्त होता है जो सीधे उत्तर की ओर जाकर 'कच्ची कुटी' के भग्नावशेष के दक्षिण पूर्व में स्थित एक मैदान में मिल जाता है। बाजार दर्वाजा वस्तुतः किसी पुराने नगर द्वार के ही स्थान पर है ऐसा मानने के लिए सबल कारण है, क्योंकि यहीं से एक बड़ी सड़क या बाजार का आरम्भ होता है।"

इस प्रकार बाजार-दर्वाजा एक पुराना दर्वाजा सिद्ध होता है, तथा उसकी सड़क उपरोक्त महावीथी होने लायक है। इसके विरुद्ध वैतारा-दर्वाजे के बारे में डा० फोगल का कहना है कि इमारतों के ध्वंसावशेष की अनुपस्थिति में इस स्थान पर किसी फाटक का अस्तित्व सिद्ध करना असम्भव है। इस तरह वैतारा-दर्वाजे के दर्वाजा होने में भी संदेह है। तिन्दुकाचीर मल्लिकाराम[2] दक्षिणद्वार के पास था। बाजार-दर्वाजे से प्रायः दो सौ गज पूर्व अब भी एक ध्वंसावशेष है; इस पर अब भी एक छोटा-सा मन्दिर चीरेनाथ के नाम से विख्यात है। क्या इस चीरेनाथ का 'तिन्दुकाचीरे' के चीरे से तो कोई सम्बन्ध नहीं है? इस प्रकार बाजार-दर्वाजा ही दक्षिणद्वार मालूम होता है, जहाँ से जेतवन-द्वार ३७०० फीट पड़ेगा, जो कि गेलही-दर्वाजे (१३८६') की अपेक्षा अधिक तथा युन्-च्वेङ के ५, ६ (फाहियान-६,७) ली के समीप है।

---

१ Archaeological Report, 1907-8

२ "भगवा ....जेतवने.........। पोट्ठपादो परिब्बाजको समयप्पवादके, तिन्दुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे पटिवसति.........सद्धिं तिसमत्तेहि परिब्बाजकसतेहि। भगवा.........सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। ....अतिप्पगो खो ताव,........पिण्डाय चरितुं, यन्नुनाहं....येन पोट्ठपादो परिब्बाजको तेनुपसंकमेय्यन्ति।" —(दी० नि० १।९)

"नगरद्वारसमीपं गन्त्वा अत्तनो रुचिवसेन सुरियं ओलोकेत्वा...." —(अ० क० २३९)

केवट्टद्वार

केवटद्वार के बारे में हम सिर्फ इतना ही जानते हैं कि उसके बाहर पाँच सौ घर मल्लाहों का एक गाँव (केवट्ट गाम) बसता था। मल्लाहों का गाँव नदी के समीप होना आवश्यक है। अचिरवती की तरफ नगर का प्रधान द्वार उत्तर द्वार था। उत्तर द्वार का ही दूसरा नाम केवट्टद्वार था, इसके मानने के लिए हमें कोई कारण नहीं मिलता। तब यह दर्वाजा सम्भवतः राजगढ़ दर्वाजा था, जो कि महेट के पूर्व-उत्तर कोने पर नदी के समीप पड़ता है।

श्रावस्ती नगर के भीतर की वस्तुओं में राजकाराम, राजप्रासाद अनाथ-पिंडक और विशाखा के घर, राजकचहरी, बाजार यह मुख्य स्थान हैं; जिनका थोड़ा बहुत वर्णन अट्ठकथाओं और त्रिपिटक में मिलता है।

राजकाराम

यह भिक्षुणियों का आराम था। इसके बनाने के बारे में धम्मपद अट्ठकथा[1] में कहा गया है—"(बौद्ध भिक्षुणियों में सर्वश्रेष्ठ) उत्पलवर्णा एक समय चारिका के बाद अन्धवन में वास कर रही थी। उस समय तक भिक्षुणियों के लिए अरण्यवास निषिद्ध नहीं ठहराया गया था।...........उत्पलवर्णा पर आसक्त उसके मामा के लड़के नन्द ने उस पर बलात्कार किया। भगवान् ने इस पर राजा प्रसेनजित् से नगर के भीतर भिक्षुणी संघ के लिए निवास-स्थान बनाने को कहा। राजा ने नगर में एक तरफ आराम बनवा दिया। इसके बाद भिक्षुणियाँ नगर के भीतर ही वास करती थीं।" मज्झिम-निकाय में—"महाप्रजा-

---

१ उप्पलवण्णा......जनपदचारिकं चरित्त्वा पच्चागता अन्धवन पाविसि। तदा भिक्खुणीनं अरञ्ञवासो अपटिक्खित्तो होति। अथ'स्सा तत्थ कुटिकं कत्त्वा मञ्चकं पञ्ञपेत्त्वा साणिया परिक्खिपिंसु।....मातुलपुत्तो पनस्सा नन्दमाणवो... अभिभवित्त्वा अत्तना पत्थितकम्मं कत्वा पायासि।....सो पठविं पविट्ठो।... .... सत्था पन राजानं पसेनदिकोसलं पक्कोसापेत्त्वा....भिक्खुणीसङ्घस्स अन्तोनगरे वसनट्ठानं कातुं वट्टातीति। राजा......नगरस्स एकपस्से भिक्खुणी-संघस्य वसनट्ठानं कारापेसि। ततो पट्ठाय भिक्खुनियो अन्तो गामे एव वसन्ति।"

—(ध० प० ५।१०, अ० क० २३७-२३९)

पति गौतमी ने पाँच सौ भिक्षुणियों के साथ जेतवन में[1] जाकर भगवान् से भिक्षुणिओं को उपदेश देने के लिए प्रार्थना की। भगवान् ने इस पर आयुष्मान् नन्दक को उपदेश देने के लिए राजकाराम भेजा। अट्ठकथा में[2] राजकाराम के बारे में इस प्रकार लिखा है—'राजा प्रसेनजिन् का बनवाया, नगर के दक्षिण में (अनुराधपुर के) थूपाराम के समान स्थान पर विहार।' इस आराम का नगर के दक्षिणी किनारे पर होना स्पष्ट है। साथ ही यह दक्षिणद्वार से बहुत दूर नहीं था, क्योंकि हम आनन्द को भिक्षुणियों के आश्रम में जाकर उपदेश देकर, पीछे पिण्डपात के लिए जाते देखते हैं[3]।'

अब हमें यह देखना है कि राजकाराम बाजार-दर्वाजे से किधर हो सकता है। नक्शे के देखने से मालूम होगा, वैंतारा-दर्वाजे से इमली दर्वाजे तक प्राकार की जड़ में नगर के भीतर की तरफ मन्दिरों की जगह है। इसमें पश्चिम का भाग जैन मन्दिरों द्वारा भरा हुआ है और पूर्वीय भाग ब्राह्मण मन्दिरों द्वारा। मालूम होता है ब्राह्मण मन्दिर के पूर्व, प्राकार से सटा ही, राजकाराम था, जिसमें महाप्रजापती गौतमी अपनी भिक्षुणियों के साथ रहा करती थीं। युन-च्वेङ ने राजा प्रसेनजित् का बनवाया हाल, और प्रजापती भिक्षुणी का विहार अलग-अलग वर्णन किया है; किन्तु पाली ग्रन्थों में नगर के भीतर राजा प्रसेतजित् द्वारा बनवाया भिक्षुणियों का आराम ही आता है, जिसे राजकाराम कहते थे।

अनाथपिण्डक का घर

इसमें सन्देह नहीं कि बाजार-दर्वाजे से उत्तर दक्षिण जाने वाली सड़क

---

१ "जेतवने... ..महापजापती गोमती पञ्चमत्तेहि भिक्खुनीसतेहि सद्धिं... ......उपसंकमित्वा......अवोच—ओवदतु भन्ते भगवा, भिक्खुनियो......। भगवा आयस्मन्तं नन्दकं आमन्तेसि—ओवद नन्दक, भिक्खुनियो। ...। अथ...नन्दको... येन-राजकारामो तेनु' पसंकमि। —(म० नि० ३।५।४)

२ "पसेनदिना कारितो नगरस्स दक्खिणानुदिसाभागे थूपारामसदिसो ठाने विहारो...।" —(अ० क० १०१२)

३ आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं ....येन'ञ्ञतरो भिक्खुन'पस्सयो तेनु'पसंकमि। ....भिक्खुनियो धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा......उट्ठायासना पक्कामि......सावत्थियं पिण्डाय। —(स० नि० ४६।१।१०)

श्रावस्ती की महावीथी (सबसे बड़ी सड़क) थी। यह विस्तृत सड़क सीधी नगर के उत्तरी भाग तक चली गई है। झाड़ियों से रहित इस मार्ग की अगल-बगल की सीमाएँ अब तक स्पष्ट हैं। नगर का बाजार और बड़े-बड़े धनिकों का घर इसी के किनारे पर होना स्वाभाविक है। इस प्रकार अनाथ-पिंडक के घर को भी इसी के किनारे ढूँढ़ना पड़ेगा। धम्मपद-अट्ठकथा से मालूम होता है कि अनाथ-पिंडक का[1] घर ऐसे भाग पर था, जहाँ से पूर्व और उत्तर दर्वाजों को रास्ता अलग होता था। अनाथ-पिंडक के घर से ही उत्तर दर्वाजे की[2] तरफ होने को, विशाखा तभी जान सकती थी, जबकि वहाँ से सीधा रास्ता उत्तर दर्वाजे को गया हो। ऐसा स्थान कच्ची कुटी ही है; जो महावीथी के उस स्थान पर अवस्थित है, जहाँ से एक रास्ता नौसहरा-दर्वाजे (उत्तर-द्वार) को मुड़ा है। युन्-च्वेङ ने प्रजापति के विहार से इसे पूर्व ओर बतलाया है; लेकिन उसके साथ इसकी संगति बैठाने का कोई उपाय नहीं है, जबकि राज-काराम दक्षिण द्वार के पास प्राकार की जड़ में होना निश्चित है। अनाथपिंडक का घर सात महल और सात दर्वाजों का था। जातक में[3] उसके चौथे दर्वाजे का भी जिक्र आया है, जिस पर एक देवता का बास था।

विशाखा का घर

विशाखा का श्वशुर मिगार सेठ श्रावस्ती के सबसे बड़े धनियों में था। इसका भी मकान अनाथपिंडक के मकान के पास ही था। क्योंकि ऊपर के उद्धरण में हम पाते हैं कि भगवान् के अनाथपिंडक के घर से उत्तरद्वार की

१ "घरं सत्तभूमकं सत्तद्वारकोट्ठकपतिमण्डितं, तस्य चतुत्थे द्वारकोट्ठके एका देवता......।—(जातक० १, पृ०१९७)

२ "अनाथपिंडिकस्स गेहे भत्तकिच्चं कत्वा उत्तरद्वाराभिमुखो अहोसि। पकतियापि सत्था विसाखाय गेहे भिक्खं गण्हित्वा दक्खिणद्वारेन निक्खमित्वा जेतवने वसति। अनाथपिण्डिकस्स गेहे भिक्खं गहेत्वा पाचीनद्वारेन निक्खमित्वा पुब्बारामे वसति। उत्तरद्वारं सन्धाय गच्छन्तं...विसाखापि.........सुत्वा......... गन्त्वा......।" —(ध० प० ४।९, अ० क०२००)

३ १४२ "अनाथपिण्डाकस्स घरे चतुत्थे द्वारकोट्ठके वसनक मिच्छादिट्ठि देवता।"...... —(जातक २८४, पृ० ६४९)

ओर जाने की खबर तुरन्त विशाखा को लग गई। सम्भवतः पक्की कुटी या स्तूप "ए" विशाखा के घर को चिन्हित करते हैं।

राजमहल

यह (१) अचिरवती नदी के किनारे था, क्योंकि राजा प्रसेनजित् और मल्लिका देवी ने अपने कोठे पर से अचिरवती में खेलते-नहाते हुए छवग्गीय भिक्षुओं को देखा। (२) पुब्बकोट्ठक[1] इससे बहुत दूर न था, क्योंकि राजा के नहाने के लिए यहाँ एक खास घाट था। (३) वह[2] विशाखा के घर और पूर्वद्वार के बीच में, पूर्वद्वार के समीप पड़ता था, क्योंकि विशाखा राजा के पास वहाँ अधिक चुंगी लेने के विषय में फरियाद करने जाती है, फिर वहाँ से दूर न होने की वजह पूर्वाराम चली जाती है, तब भगवान् के मध्याह्न में ही आने का कारण पूछने पर वह राजदर्बार के काम को बतलाती है। विशाखा का घर महावीथी पर अनाथपिंडक के[3] घर के पास ही था, यह हम पहले बतला आये हैं। (४) राजा प्रसेनजित् के हाथी पर सवार होकर नगर से बाहर जाते वक्त आनन्द से पूर्वद्वार के बाहर भेंट होना भी बतलाया है कि राजमहल पूर्वद्वार के समीप था। राजा की यह यात्रा किसी विशेष काम के लिए न थी, अन्यथा उसे आनन्द से अचिरवती के किनारे पेड़ के नीचे बैठकर

---

१ "कस्सपदसबलस्स काले अचिरवी.. उदकेन भिन्दित्वा महन्तं उदकदहं मापेसि समतित्थं अनुपुब्बागम्भीरं। तत्थ एको रञ्ञो नहानतित्थं, एकं नागरानं एकं भिक्खुसंघस्स, एकं बुद्धानन्ति..।" —(म० नि १।३।६, अ० क० ३७१)

२ "विसाखाय...कोचिदेव अत्थो रञ्ञे पसेनदिम्हि .... पटिबद्धो होति। तं राजा पसेनदि...न यथाधिप्पायं तीरेति। अथ खो विशाखा.. दिवादिवस्स उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवोदेत्वा......निसीदि।...हन्त ! कुतो नु त्वं विसाखे आगच्छसि दिवादिवस्स ?" —(उदान० २।९)

३ "जातिकुलतो.........माणमुत्तादिरचितं भण्डजातं तस्या पण्णकारत्थाय पेसितं। तं नगरद्वारप्पत्तं सुँकिका...सुंकुं...अतिरेकं गण्हिसु। दिवदिथस्साति... मज्झन्तिके कालेति अत्थो। राजनिवेसनद्वारं गच्छन्ती तस्स अत्थस्स अनिट्ठितत्ता निरत्थकमेव उपसंकमि, भगवति, उपसंकमनमेव पन...सत्थकन्ति...इमाय वेलाय इधगता'ति। —[उ० अ० क० १०५ (११०)]

व्याख्यान सुनने की फुर्सत कहाँ होती ? बिना काम के दिल बहलाव के लिए नगर से बाहर निकलने में उसका महल के नजदीक वाले दर्वाजे से ही शहर के बाहर जाना अधिक सम्भव मालूम होता है । इन सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि राजकीय प्रासाद में उत्तर में नौसहरा-दर्वाजे से बाँकी दर्वाजे तक, और दक्षिण में महावीथी के मकान से गंगापुर-दर्वाजे तक था । युन्-च्वेङ का[१] कहना है—"राजप्रासाद से थोड़ी ही दूर पूर्व की ओर एक स्तूप है, जो पुरानी बुनियादों पर खड़ा है । यह वह स्थान है जहाँ राजा प्रसेनजित् द्वारा बुद्ध के उपयोग के लिए बनवायी हुई शाला थी । इसके बाद एक बुर्ज है यहीं पर प्रजापती का विहार था ।" इसके अनुसार राजमहल राजकाराम से पश्चिम था । लेकिन ऐसा स्वीकार करने पर, वह अचिरवती के किनारे नहीं हो सकता, जिसका प्रमाण अट्ठकथा से भी पुराने विनयग्रन्थों में मिलता है ।

कचहरी

हमें मालूम है, कि उत्तरद्वार से नगर के भीतर होकर आते हुए भिक्षुओं को 'विनिच्छयसाला' (कचहरी) मिली थी, जहाँ उन्होंने जजों को घूस लेकर अन्याय करते देखा था । कचहरी का राजकीय महल के हलके से मिला हुआ होना अधिक सम्भव प्रतीत होता है । इस प्रकार यह कचहरी राजमहल के उत्तर-पश्चिम के कोण वाले भाग पर नौसहरा-दर्वाजे के पास रही होगी ।

महावीथी

(१) यह नगर की प्रधान सड़क थी, यह इसके नाम से स्पष्ट है । (२) सुवण्णसाम जातक में[२] उल्लिखित धनी सेठ का मकान, सम्भवतः अन्य सेठों की भाँति इसी महावीथी पर था । यह वीथी जेतवन जाने वाले द्वार—दक्षिण द्वार को सीधी जाती थी, तभी तो वह सेठ अपने मकान लोगों को गन्धमाला लेकर भगवान् के दर्शनार्थ जाते हुए देखकर उनका जेतवन जाना निश्चित कर रहा है । (३) अनाथपिंडक के मकान से निकलते ही मालूम हो जाता था, कि

१. Beal, pp. 92, 63.

२ "सावत्थियं किर अट्ठारसकोटिविभवस्स एकस्स सेट्ठिकुलस्स एकपुत्तो अहोसि । सोए कदिवसम्हि पासादवरगतो सीहपञ्जरं उग्घाटेत्वा महावीथियं ओलोकेन्तो गन्धमालादिहत्थं महाजनं धम्मस्सवनत्थाय जेतवनं गच्छन्तं दिस्वा.. ।
—(सुवण्णसामजातक ५३९)

भगवान् पूर्व दर्वाजे को जा रहे हैं, या उत्तर वाले दर्वाजे को। दक्षिण दर्वाजे को जाने वाली वीथी हमें मालूम ही है, जिसकी विशेषता इस समय भी स्पष्ट है। इस प्रकार दक्षिण (बाजार) दर्वाजे से उत्तर मुँह को जो चौड़ी सड़क-सी हमें मालूम पड़ रही है, यही महावीथी है; जिसके बारे में कि डा० फोगल ने सर्वे रिपोर्ट में[1] लिखा है।

दक्षिण दर्वाजे का बाजार-दर्वाजा नाम भी इस विषय में खास अर्थ रखता है।

गण्डम्बरुक्ख

यद्यपि भगवान् के समय में इस आम के[2] वृक्ष का होना सम्भव नहीं है, किन्तु, परवर्ती काल में इसका अधिक महत्व पाया जाना बिल्कुल निश्चित है। ५२२ ई० पू० की आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन नगर में प्रवेश करने पर, कहते हैं, गण्ड उद्यानपाल ने एक आम भगवान् को दिया। भगवान् ने खाकर उसे वहीं रोपवा दिया, और उनकी अद्भुत् शक्ति से वह उसी समय बड़ा वृक्ष हो गया। कुछ भी हो, परवर्तीकाल में बाजार-दर्वाजे के अन्दर बाजार के घरों से पहले ही, अर्थात् दर्वाजे से थोड़ा ही आगे एक आम का वृक्ष था, जो इस प्रकार के चमत्कार का स्मारक था। इस स्थान पर भी कोई स्तूप अवश्य रहा होगा। सम्भवतः यह वृक्ष महावीथी से राजकाराम जाने वाले मोड़ पर ही था।

---

१ "A Passage 12' wide which gives access to a broad path leading almost due north and widening out into a glade, which is situated south-east of the ruined temple known as the Kachhikuti..................the Bazar Darwaza it seems to be the starting point of a broad street of bazar..."

A.S.R., 1907-8, p. 86

२ "सत्था आसल्हिपुण्णमदिवसे अत्तोनगरं पाविसि। रञ्ञो उय्यानपालो गण्डो नाम ..अम्बपक्कं .... आदाय गच्छन्तो अन्तरामग्गे सत्थारं दिस्वा चिन्तेसि—राजा इमं अम्बं खादित्वा मय्हं अट्ठ वा सोलसं वा कहापणे ददेय्य।... सो तं अम्बं सत्थु उपनामेसि।....सत्था ...अम्बापानकं पिवित्वा गण्डं आह— इमं अम्बट्ठिं इधेव......रोपेहीति।......हत्थे धोतमत्ते येव......पण्णासहत्थो अम्बरुक्खो...पुप्फफलसंछन्नो हुत्वा......।"

—(ध० प० १४२; अ० क० ४४८)

पञ्चछिद्दकगेह, ब्राह्मणवाटक

पञ्चछिद्दकगेह भी एक बड़े चमत्कार का स्थान है। चमत्कारिक स्थानों के लिए जनता का अधिक उत्साह सभी धर्मों में देखा जाता है। इसका 'पञ्चछिद्दकगेह' नाम कैसे पड़ा, वह अट्ठकथा[1] में दिया गया है। यद्यपि ऐसे किसी स्थान का वर्णन फाहियान और युन्-च्वेङ में से किसी ने नहीं किया है; तो भी यह स्थविरवादियों की पुरानी परम्परा पर अवलम्बित है। युन्-च्वेङ के समय में भी श्रावस्ती और उसके आस-पास के विहार सम्मितीय सम्प्रदाय के भिक्षुओं के आधीन थे जो कि हीनयानी थे, और महायान की अपेक्षा विभज्जवाद (स्थविरवाद) से बहुत मिलते-जुलते थे। युन्-च्वेङ का वर्णन श्रावस्ती के विषय में अत्यन्त संक्षिप्त है, इसलिए पञ्चछिद्दकगेह का छूट जाना स्वाभाविक है। कथा यों है—"एक ब्राह्मणी ने बड़े स्थविरों को निमन्त्रित किया। सात वर्ष के लड़कों को आया देखकर ब्राह्मणी असन्तुष्ट हुई। फिर उसने अपने पति को ब्राह्मणवाट से ब्राह्मण लेने को भेजा। उन श्रामणेरों के तपोबल से शक्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर ब्राह्मणवाट में ब्राह्मणों के बीच अग्रासन पर जाकर बैठ गया। ब्राह्मण शक्र को लेकर घर लौटा। चार श्रामणेर और शक्र भोजन कर पाँच ओर से निकल गये। श्रामणेरों में से एक कोनिया में घुसकर निकल गया; एक छाजन के पूर्वभाग में, एक पश्चिम भाग में और एक पृथ्वी में शक्र भी किसी स्थान से बाहर चला गया। उस दिन से उस घर का नाम पञ्चछिद्दकगेह पड़ गया।" यह ब्राह्मणवाट शायद श्रावस्ती में ब्राह्मणों

१ "एका फिर ब्राह्मणी चतुन्नं भिक्खूनं उद्देसभत्तं सज्जेत्वा ब्राह्मणं राह—विहारं गन्त्वा चत्तारो महल्लकब्राह्मणे उद्दिसित्त्वा आनेहीति।:.....।..तत्थ संकिच्चो, पण्डितो, सोपाको, रेवतोति सत्तवस्सिका चत्तारो खीणासवसामणेरा पापुणिसु। ब्राह्मणी सामणेरे दिस्वा कुपिता। अथ तेसं गुणतेजेन (सक्को) जराजिण्णमहल्लकब्राह्मणो हुत्वा तस्मिं ब्राह्मणवाटके ब्राह्मणानं अग्गासनु निसीदि। ब्राह्मो.. तं आदाय गेहं अगमासि।...पञ्च' पि जना आहारं गहेत्वा एको कण्णिकामंडलं विनिविज्झित्वा एको छन्दनस्स पुरिमभागं एको पच्छिमभागं एको पठविया निमुज्जित्वा सक्कोपि एकेन ठानेन निक्खमित्वाति एवं पञ्चधा अगमंसु? तो पट्ठाय च पन तं गेहं पञ्चछिद्दकगेहं फिर नाम जातं।"

—(ध० प० २६।२३, अ० क० ६६३, ६६४)

का कोई विशेष पवित्र स्थान था, जहां ब्राह्मण इकट्ठे हुआ करते थे। घुसुंडी (पुरातन माध्यमिका) के पास के ई० पू० द्वितीय शताब्दी के शिलालेख में[1] 'नारायणवाट' शब्द आता है। 'यज्ञवाट' भी इसी प्रकार का एक शब्द है। 'वाट' शब्द विशेषकर पवित्र स्थानों के लिए प्रयुक्त होता था। यह ब्राह्मणवाट कहाँ था, यद्यपि इसके लिए और कोई निश्चित प्रमाण हमारे पास नहीं है, तथापि अनुमान किया जा सकता है, कि ब्राह्मणों के लिए बहुत ही पवित्र स्थान रहा होगा। यद्यपि छठी शताब्दी ई० पू० (वि० पू० ४४३–५४२) में यज्ञों का युग था, अभी मूर्तिपूजा आरम्भ न हुई थी; तो भी मूर्तिपूजा के युग में इस स्थान की पवित्रता का ख्याल कर अवश्य इसे भी उपयुक्त बनाया गया होगा। हम देख आये हैं कि, श्रावस्ती के दक्षिण दीवार-से सटे हुए वैतारा-दर्वाजे से शोभनाथ-दर्वाजे तक की भूमि हिन्दू और जैन मन्दिरों के लिए सुरक्षित थी। भिक्षुणियों के आराम (राजकाराम) को भी हमने यहीं निश्चित किया है। ऐसी हालत में राजकाराम और जैन मन्दिरों के बीच की भूमि, जिसमें कि हिन्दू मन्दिर स्थित हैं, ब्राह्मण वाट होने के लायक है। इसके अतिरिक्त दूसरा उपयुक्त स्थान ब्राह्मणवाट के लिए अचिरवती के किनारे की तरफ सूर्यकुण्ड या मीरासैयद की कब्र की जगहों पर, ढूँढ़ा जा सकता है।

सड़कें

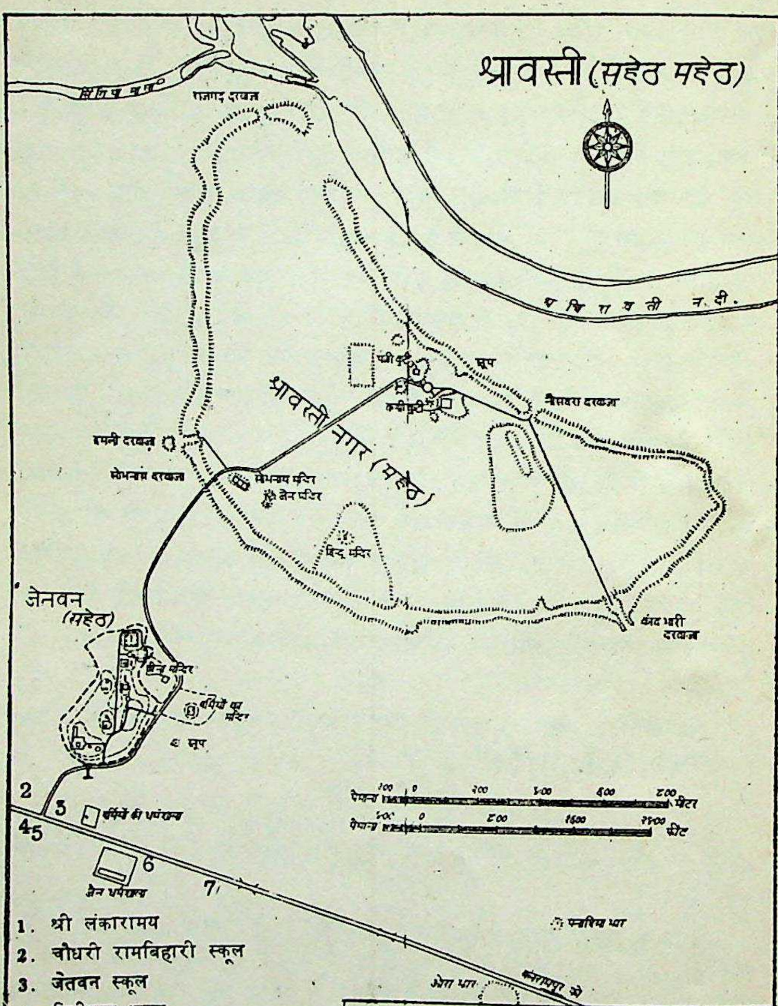
महावीथी के अतिरिक्त एक ही ओर सड़क है, जिसका हमें पता है। यह है अनाथपिण्डक के घर से पूर्वद्वार को जाने वाली।

चुंगी की चौकियाँ

हम देख चुके हैं कि नगर के दर्वाजों पर चुंगी की चौकियाँ थीं। चुंगी वालों ने अधिक चुंगी ले ली थी, जिसके लिए विशाखा को राजा के पास जाना पड़ा था।

नगर के भीतर सम्बन्ध रखने वाले स्थानों में से जिन-जिन के विषय में त्रिपिटक और उसकी कथाओं में कुछ आया है, उनका हम वर्णन कर चुके है। बाहर वाले स्थानों में सबसे प्रधान है जेतवन। उसके बाद पूर्वाराम, समयप्पवादक आराम, अन्धवन, ये तीन स्थान हैं, जिनका वर्णन हमें त्रिपिटक और अट्ठकथा में मिलता है।

१ श्री काशीप्रसाद जायसवाल, एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १६, पृ० २७।


श्रावस्ती (सहेठ महेठ)
अ चि रा व ती न दी.
श्रावस्ती नगर (महेठ)
स्तूप
हिन्दू मन्दिर
जैन मन्दिर
जेतवन
(सहेठ)
स्तूप
2
3
4
5
6
7
जैन धर्मशाला
1. श्री लंकारामय
2. चौधरी रामबिहारी स्कूल
3. जेतवन स्कूल
4. निरीक्षण भवन
5. थाई मन्दिर
6. जैन स्वेताम्बर धर्म शाला-मन्दिर
7. जापानी-विश्व शान्ति घंटा

श्रावस्ती का विकास कार्य

जेतवन विद्यालय

श्रावस्ती का प्राचीन नगर, जिसे बौद्ध, जैन और सनातनी एक समान पूज्य मानते हैं, इस समय खण्डहरों के रूप में सहेठ-महेठ के नाम से विदित है। इसका कुछ भाग उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में और कुछ भाग बहराइच जिले में बिखरा पड़ा है। खण्डहर पूर्वोत्तर रेलवे की गोंडा-गोरखपुर लाइन पर बलरामपुर स्टेशन से ग्यारह मील पश्चिम में है। बलरामपुर से बहराइच आने वाली बड़ी मोटर-सड़क इसके पास से गुजरती है।

श्रावस्ती में ही अनाथपिंडक सेठ ने सुवर्ण मुद्राएं बिछाकर जमीन खरीदी थी और भगवान् बुद्ध के लिये जेतवन विहार बनवा दिया था। लाखों की लागत से विशाखा उपासिका ने विशाखाराम का निर्माण कराया था। अंगुलि-माल डाकू को भगवान बुद्ध ने यहीं पर दीक्षित किया था। त्रिपिटक के अन्तर्गत बुद्धोपदेशों में से लगभग $\frac{2}{3}$ उपदेश भगवान ने यहीं रहते हुए दिये थे। २५ चौमासे भगवान् बुद्ध ने यहीं बिताये थे। भगवान् के शिष्य आनन्द द्वारा रोपित "आनन्द बोधि" वृक्ष का यहाँ आज भी आप दर्शन कर सकते हैं। धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक महत्त्व का यह ऐतिहासिक तीर्थ आज खण्डहर मात्र है।

१—इस पुनीत भूमि के आस-पास कोई शिक्षण संस्था न थी अतः भारतीय महाबोधि सभा के संरक्षण में जेतवन विद्यालय का समारम्भ २ जुलाई १९६४ से किया गया है। यह विद्यालय लंका आदि अनेक देशों के आर्थिक और नैतिक सहयोग द्वारा संस्थापित हुआ है।

समस्त उत्तर प्रदेश में सम्भवतः यह प्रथम विद्यालय है जिसमें कक्षा ६ से १० तक निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जा रही है। यहाँ हमें अगले पाँच वर्षों के अन्दर एक विश्वविद्यालय स्थापित करना है। उदार हृदय, महानुभावों से कहना न होगा कि जिन भगवान् बुद्ध के ज्ञानलोक से प्रभावित संसार के करोड़ों मनुष्य भारतवर्ष को परम पुनीत तीर्थ मान कर श्रद्धा की दृष्टि से देखते और प्रति वर्ष लाखों की संख्या में आकर उसका दर्शन करते हैं, उन तीर्थों में प्रमुख 'श्रावस्ती' क्षेत्र की इस ज्ञान-दान-यज्ञ में रुचि लें और अपने तन-मन-धन से यथाशक्ति सहायता एवं सहयोग देकर महान् पुण्य और यश के भागी बनें।

२—श्रावस्ती में प्राप्त वस्तुओं को अन्यत्र न भेजकर वहीं सुरक्षित रखने के लिये एक संग्रहालय की स्थापना करना।

३—श्रावस्ती को बिजली के प्रकाश से आलोकित करना।

४—पुलिस चौकी की व्यवस्था करना।

५—डाक घर विस्तृत कराकर उसमें टेलीफोन और तार लेन-देन की व्यवस्था करना।

६—रोगियों को रखने की व्यवस्था के साथ एक चिकित्सालय की स्थापना।

७—पर्यटक सहायता केन्द्र की स्थापना एवं पर्यटकों को लाने-ले जाने को व्यवस्था करना।

८—श्रावस्ती के प्राचीन गौरव के अनुरूप श्रावस्ती क्षेत्र को एक सुन्दर उद्यान (जेतवन) में परिवर्तित करना।

९—श्रावस्ती के ५-६ मील के एरिया को सुरक्षित क्षेत्र घोषित करना।

१०—खण्डहरों के आस-पास मकान-दूकान एवं सरकारी गैर-सरकारी इमारतों को उस स्थान की प्राचीन वास्तुकला के ही अनुरूप निर्माण कराने के लिये लोगों को प्रोत्साहित करना।

११—पानी की व्यवस्था करना।

१२—इकौना ब्लॉक का नामकरण श्रावस्ती ब्लॉक करना।

मुद्रक : लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, ३७ कैन्टूनमेन्ट रोड, लखनऊ

ENGLISH

(20)	The Untouchable—who were they and why they became untouchables	–Dr. B. R. Ambedkar	12.00
(21)	The States and Minorities—what are their rights and how to secure them in the Constitution of free India	—Dr. B. R. Ambedkar	5-00
(22)	Shravasti	—Sthavir G. Prajnananda	3-00
(23)	Dhammapada	,, ,,	10-00

HINDI

(1)	आपात स्थिति-75 (कविता संग्रह) कारावास की कवितायें	डॉ० दाऊजी गुप्त	10-00
(2)	कारागार की कृतियाँ (कविता संग्रह)	,,	10-00
(3)	मिलिंद प्रश्न	अनु० जगदीश कश्यप	40-00
(4)	महामानव बुद्ध	राहुल सांकृत्यायन	8-00
(5)	नवदीक्षित बौद्ध	,,	3-00
(6)	साम्प्रदायिक गुत्थी	डॉ० बी०आर०अम्बेडकर	1-00
(7)	डॉ० अम्बेडकर के भाषण	श्री भगवान दास	6-00
(8)	श्रावस्ती	भिक्षु प्रज्ञानन्द	2-50
(9)	धम्मपद शतक	श्री रामेश्वर दयाल दुबे	1-00
(10)	भगवान बुद्ध और उनका धर्म	डॉ० बी०आर०अम्बेडकर	25-00
(11)	हम बौद्ध क्यों बनें ?	,, ,,	4-00
(12)	महान सेनानायक अम्बेडकर	भिक्षु ग० प्रज्ञानन्द	5-00
(13)	बौद्धों की दृष्टि में अहिंसा	,, ,,	0-60
(14)	धम्मपदं--	,, ,,	8-00
(15)	महापरिनिब्बानसुत्तं	,, ,,	8-00
(16)	बौद्ध चर्या पद्धति	भदन्त बोधानन्द महास्थविर	8-00
(17)	बौद्ध शिशु बोध	भिक्षु धर्मरक्षित	1-75
(18)	दीघ निकाय	राहुल सांकृत्यायन	50-00
(19)	बोधिचर्यावतार	आचार्य शांतिदेव	30-00
(20)	बुद्ध-अर्चना	डा० कु० विद्यावती	1-00

Available at :

Buddha Vihar, Risaldar Pa LUCKNOW.